

श्री अरविन्द कर्मधारा



संपूर्ण सत्ता तैयार है और वह निष्क्रिय-नीरव होकर प्रतीक्षा कर रही है कि तू उसके द्वारा अभिव्यक्त होना पसंद करे।

24 अप्रैल 2017 — वर्ष 47— अंक 2



डेहरी ऑन सोन तट स्थित श्री अरविन्द सोसायटी केन्द्र में तारा दीदी व अन्य द्वारा श्री अरविन्द के पवित्र देहांश की स्थापना

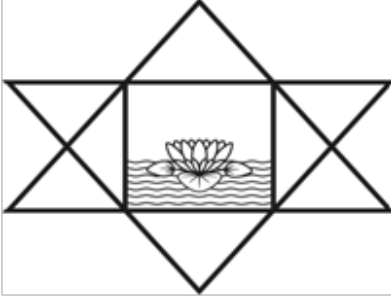


21 फरवरी 2017 - श्री माँ के 139 वें जन्म दिवस पर दुर्गा माँ के अनेक रूपों का प्रस्तुतिकरण

श्री अरविन्द कर्मधारा

श्री अरविन्द आश्रम-दिल्ली शाखा का मुखपत्र

24 अप्रैल 2017



वर्ष 47 अंक 2

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर
"फकीर"

सम्पादक

त्रियुगी नारायण वर्मा

सहसम्पादन

रूपा गुप्ता
अपर्णा रॉय

विशेष परामर्श समिति

कु० तारा जौहर,
सुश्री रंगम्मा

कार्यालय

श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली-शाखा
श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली- 110016
दूरभाष: 26524810, 26567863

विषय-सूची

1. प्रार्थना और ध्यान	5	14. श्री अरविन्द-दिव्य देहांश की स्थापना	30
2. जीवन क्या है? श्रीमा के वचन	6	रूपा गुप्ता	
3. पुनर्जन्म और व्यक्तित्व श्री अरविन्द	8	15. अवतरण	32
4. दूरदर्शिता श्रीमा	10	विमला गुप्ता	
5. 26 मार्च आध्यात्मिकता का शुभ दिन रविन्द्र ('माताजी और श्री अरविन्द' से)	13	16. 'सावित्री' के विषय में माताजी	35
6. अपनी त्रुटियों को ठीक करना श्री माँ	14	विमला गुप्ता	
7. भवानी मंदिर (श्रीअरविन्द सेंटेंनरी वाल्यूम, प्रथम खंड)	19	17. नव-सृजन का एक तिनका	42
8. वर दे विश्वनाथ शर्मा	21	शैलेन्द्र प्रसाद पाण्डेय	
9. स्थायी - स्थान सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फ़कीर'	22	18. उत्तरपाड़ा भाषण	44
10. करुणा दीदी श्रीमती शील भोला	23	श्रीअरविन्द का जगत्-प्रसिद्ध भाषण	
11. विचार और सूत्र श्रीमाताजी	24	19. एक महामानव की महायात्रा	48
12. मेरा मस्तक अपनी चरण-धूलि तल में रविन्द्रनाथ ठाकुर (गीताजंलि)	26	डॉ० के. एन. वर्मा	
13. संकल्प सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फ़कीर'	27	20. बोध विनोद	52
		सुरेन्द्रनाथ जौहर	
		21. गतिविधियां	54

प्रार्थना और ध्यान

ॐ आनन्दमयी चैतन्यमयि सत्यमयि परमे

श्री अरविन्द कर्मधारा

24 अप्रैल 2017

हे प्रभो ! मुझे अपना प्रकाश दे, वर दे कि मैं कोई भूल ना करूं । वर दे कि मैं जिस अनन्त आदर-सम्मान, जिस आध्यात्मिक भक्ति, जिस तीव्र और गम्भीर प्रेम के साथ तेरी ओर अभिमुख होती हूँ वह प्रदीप्त करने वाला, विश्वासोत्पादक, संक्रामक हो और सभी हृदयों में जागे ।



हे प्रभो, शाश्वत स्वामी, तू मेरा प्रकाश और मेरी शान्ति है, तू मेरे चरणों को राह दिखा, मेरी आंखें खोल, मेरे हृदय को प्रबुद्ध कर और मुझे ऐसे मार्ग की ओर ले चल जो सीधे तेरी ओर जाता है ।

हे प्रभो, वर दे कि तेरी इच्छा के सिवा मेरी कोई इच्छा ना हो और मेरे सभी कर्म तेरे विधान की अभिव्यक्ति हों । एक महान ज्योति मुझे परिप्लावित कर रही है और मैं तेरे सिवा और किसी चीज के बारे में सचेतन नहीं हूँ... ।

शान्ति, शान्ति, समस्त पृथ्वी पर शान्ति !

-श्री मातृवाणी

जीवन क्या है?

श्रीमां के वचन

क्या तुमने अपने-आपसे यह प्रश्न पूछा है?

यह जानने के लिये कि तुम सचमुच क्या हो और पृथ्वी पर क्यों हो, तुम्हारी भौतिक सत्ता का प्रयोजन क्या है, पृथ्वी पर उपस्थिति का क्या प्रयोजन है, इस रूपायण और सत्ता का क्या अर्थ है... लोगों की बहुत बड़ी संख्या अपने-आपसे यह प्रश्न एक बार भी पूछे बिना जीवन बिता देती है। केवल कुछ गिने-चुने लोग ही रस के साथ अपने-आपसे यह प्रश्न पूछते हैं और उनमें से भी बहुत कम होते हैं जो इसका उत्तर पाने के लिये प्रयास करते हैं। इसका उत्तर पाना इतना आसान नहीं है, तब बात और होगी जब तुम इतने भाग्यवान् होओ कि किसी ऐसे के संपर्क में आ जाओ जो इसे जानता हो, इसे खोज निकालना कोई आसान काम नहीं है। उदाहरण के लिये मान लो, तुम्हारे हाथों में यदि श्री अरविन्द की पुस्तक ना आयी होती, किन्हीं ऐसे लेखकों, दार्शनिकों की कोई पुस्तक ना आयी होती जो अपना जीवन इस खोज के लिये अर्पित कर चुके हैं, अगर तुम लाखों की तरह साधारण जगत् में निवास करते जिन्होंने कभी-कधार ही कुछ देवों या धर्मों के बारे में, किसी श्रद्धा के रूप में नहीं, आदत के रूप में ही सुना हो और वह भी तुम्हें यह ना बतलाता हो कि तुम यहाँ क्यों हो... तो तुम उसके बारे में सोचने की भी नहीं सोचते। तुम दिन-पर-दिन अपना दैनिक जीवन जीते हो। जब तुम बहुत छोटे होते हो तो तुम बस खेलने, खाने और कुछ समय बाद सीखने के बारे में सोचते हो और उसके

बाद जीवन की सभी परिस्थितियों के बारे में सोचते हो। लेकिन अपने आगे यह समस्या रखना, इस समस्या का सामना करना और अपने-आपसे पूछना कि 'आखिर मैं यहाँ क्यों हूँ?' कितने लोग यह करते हैं? ऐसे लोग हैं जिनके आगे यह समस्या तभी आती है जब वे किसी मुसीबत का सामना करते हैं, जब वे अपने किसी प्रिय को मरते देखते हैं, जब वे किसी विशेष दुःखद या कठिन परिस्थिति में होते हैं। अगर वे काफी बुद्धिमान् हों तो जरा मुड़कर अपने-आपसे पूछते हैं, 'यह क्या मुसीबत है जिसमें से हम गुजर रहे हैं, इसका उपयोग और प्रयोजन क्या है?'

और केवल तभी जब तुम यह जान लो कि तुम्हारे अन्दर दिव्य आत्मा है और अन्ततः तुम्हें इस दिव्य आत्मा को खोजना और पाना है- यह स्थिति बहुत बाद में आती है, लेकिन फिर भी सब चीजों के बावजूद भौतिक शरीर के जन्म के साथ ही, सत्ता के अन्दर उसकी गहराइयों में यह चैत्य उपस्थिति होती है जो सारी सत्ता को परिपूर्णता की ओर धकेलती है लेकिन इस चैत्य सत्ता को कौन जानता और पहचानता है? यह चीज भी विशेष परिस्थितियों में आती है और दुर्भाग्यवश अधिकतर इन्हें कष्टदायक परिस्थितियाँ होना पड़ता है, अन्यथा आदमी बिना सोचे-समझे जीता चला जाता है। तुम्हारी सत्ता की गहराइयों में चैत्य सत्ता होती है जो खोजती,

खोजती और खोजती रहती है। चेतना को जगाने की कोशिश करती है और ऐक्य को पुनः स्थापित करने का प्रयास करती है। लेकिन व्यक्ति को इसके बारे में कुछ भी पता नहीं होता...।

तब तक तुम्हें बादलों में जीना, नियति के भार तले टटोलते रहना पड़ता है जो कभी-कभी तुम्हें कुचल देता है, तुम्हें ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अमुक रीति से पैदा हुए हो और इसके लिए तुम कुछ नहीं कर सकते। तुम एक ऐसे जीवन के भार के नीचे हो जो तुम्हें दबा देता है, ऊपर उठाने की जगह नीचे जमीन पर रेंगने के लिए बाधित करता है, सभी धागों को दिखाने, सभी मार्गदर्शक धागों को दिखाने

की जगह रेंगने पर बाधित करता है, तुम्हें इस अर्ध-चेतना में से उछल पड़ना चाहिये जिसे बिलकुल सामान्य माना जाता है, यह तुम्हारे जीवन का 'सामान्य' तरीका होता है और इस अनिश्चिति, यथार्थता के अभाव पर नजर डालने के लिये और उस पर आश्चर्य करने के लिये तुम पर्याप्त पीछे तक नहीं हटते; जबकि इसके विपरीत, यह जानना कि तुम खोज रहे हो और उसे सचेतन रूप से खोजना, सोच-विचार कर, दृढ़ता से और ठीक ढंग से जानना यह सचमुच विरल है, लगभग 'असामान्य' स्थिति है: परन्तु फिर भी केवल इसी तरीके से आदमी सचमुच जीना शुरू करता है।



पुनर्जन्म और व्यक्तित्व

श्री अरविन्द

पुनर्जन्म के सम्बन्ध में जो सामान्य भ्रान्त लोकधारणा है उसे तुम्हें कभी प्रश्रय नहीं देना चाहिये। लोगों की सामान्य धारणा यह है कि अहोबल पंडित ने ही जगेश्वर मिश्र के रूप में पुनः जन्म लिया है, वह बिलकुल वही व्यक्ति हैं, उनका व्यक्तित्व, स्वभाव और गुण-गरिमा जो कुछ पहले जीवन में था ठीक वही इस जन्म में भी है, अन्तर केवल इतना ही है कि पूर्वजन्म में वह सिर पर एक बहुत बड़ी पगड़ी बांधते थे और और अब दुपल्ली टोपी लेते हैं, पहले संस्कृत-भाषा में बातचीत करते थे और अब ठेठ हिन्दी बोलते हैं, परन्तु बात ऐसी नहीं है। भला उसी व्यक्तित्व या स्वभाव को, कल्प के आरम्भ से अन्त तक, लाखों बार दोहराते रहने से क्या लाभ हो सकता है? जीव जन्म लेता है अनुभव के लिये, अपनी वृद्धि के लिये, अपने क्रम-विकास के लिये जिससे अन्त में वह इस जड़तत्त्व के अन्दर भगवान् को उतार सके। यही केन्द्रीय पुरुष (हृत्पुरुष) जन्म लेता है, बाहरी व्यक्तित्व नहीं। व्यक्तित्व तो महज एक सांचा है जिसे केन्द्रीय पुरुष अपने एक जीवन के अनुभवों को रूपान्वित करने के लिये निर्मित करता है। दूसरे जीवन में वह अपने लिये एक दूसरा ही व्यक्तित्व, दूसरी ही योग्यता, दूसरा ही जीवन और कार्यक्षेत्र निर्माण करता है। मान लो कि वीर कवि वर्जिल (Vergil) का पुनर्जन्म हुआ। सम्भव है कि वह एक या दो और जन्मों में कविता ही लिखें, पर अब वह निश्चय ही कोई महाकाव्य नहीं लिखेंगे। जैसी गीतिकाएं उन्होंने रोम में

लिखने की चेष्टा तो की, पर उन्हें सफलता नहीं मिली। फिर किसी दूसरे जन्म में यह हो सकता है कि वह कवि ही ना हों, बल्कि एक दार्शनिक और योगिक हों और उच्चतम शक्ति को प्राप्त करने और अपने जीवन में अभिव्यक्त करने का प्रयास करें- क्योंकि इस ओर भी उस जीवन में उनकी चेतना का झुकाव था और इसे वह अपने जीवन में सार्थक नहीं कर सके थे। उस जन्म से पहले, सम्भव है कि, वह कोई योद्धा या शासक रहे हों और एइनीज (Aeneas) या ऑगस्टस (Augustus) की भांति उन्होंने भी स्वयं पराक्रम दिखाये हों और फिर उसके बाद के जन्म में उन्हीं बातों का अपनी कविता में बखान किया हो। तात्पर्य, इस तरह से यह केन्द्रीय पुरुष विभिन्न जन्मों में एक नया ही चरित्र, एक नया ही व्यक्तित्व निर्माण करता है, वृद्धि को प्राप्त होता है, विकसित होता है, सब प्रकार के पार्थिव अनुभवों को पार करता हुआ आगे बढ़ता है।

जैसे-जैसे यह विकसनशील जीव अधिकाधिक विकसित होता जाता है और अधिकाधिक समृद्ध तथा जटिल होता जाता है वैसे-वैसे वह अपने विविध व्यक्तित्वों को मानों संचित करता जाता है। कभी-कभी ये व्यक्तित्व क्रियाशील वृत्तियों के पीछे वर्तमान रहते हैं और अपना कोई रंग, कोई विशेषत्व, कोई सामर्थ्य जहाँ-तहाँ उनके अन्दर बिखेरते रहते हैं; अथवा कभी-कभी ये सामने आ जाते हैं और तब एक बहुविध व्यक्तित्व प्रकट होता है, एक बहुमुखी चरित्र या सामर्थ्य अभिव्यक्त

होता है जो कभी-कभी सर्वोमुखी सामर्थ की तरह ही दिखायी देता है। परन्तु, इस प्रकार से जब पहले का कोई व्यक्तित्व, कोई सामर्थ पूर्ण रूप से सामने आ जाता है तब उसका उद्देश्य पहले किये हुए कर्मों को ही दोहराना नहीं होता, बल्कि उसका उद्देश्य होता है उसी सामर्थ को नये आकार-प्रकार में ढालना तथा उसे जीव के नवविकसित सामञ्जस्य के अन्दर सम्मिलित कर देना, जो कुछ पहले था उसी को फिर से प्रकट करना नहीं। अतएव तुम्हें ऐसी आशा नहीं रखनी चाहिये कि जो पहले योद्धा और कवि थे वे फिर से वैसे ही योद्धा और कवि होंगे। इन बाह्य लक्षणों में से कोई-कोई लक्षण फिर से प्रकट हो सकते हैं, पर बहुत-कुछ परिवर्तित होकर तथा एक नये समवाय के अन्दर नये रूप में ढल कर ही प्रकट होंगे। अब उनकी सारी वृत्तियाँ एक नयी दिशा में ही परिचालित होंगी जिसमें उनके द्वारा वह कार्य हो सके जो पहले नहीं हुआ था।

एक बात और है। मनुष्य का व्यक्तित्व, चरित्र ही वह वस्तु नहीं है जो पुनर्जन्म में सबसे अधिक महत्व रखती हो- वह वस्तु है हृत्पुरुष जो प्रकृति के क्रमविवर्तन के पीछे विद्यमान रहता है और उसके साथ-साथ विकसित होता रहता है। यह हृत्पुरुष जब शरीर छोड़ देता है, और फिर रास्ते में मनोमय और प्राणमय कोषों को भी त्याग कर अपने विश्राम-स्थल में जाता है तब वह अपने साथ अपने अनुभवों का सार-तत्त्व भी लेता जाता है- अवश्य ही भौतिक घटनाओं को नहीं, प्राण की क्रियाओं को नहीं, मन की रचनाओं को

नहीं, बाह्य व्यक्तित्व के रूप में प्रकट होने वाले सामर्थ और चरित्र को नहीं, प्रत्युत उस सार-वस्तु को लेता है जिसे वह इन सबके अन्दर से एकत्र करता है, जिसे हम दिव्य तत्त्व कह सकते हैं और जिसके लिए ही इन सबकी योजना की गई थी। यही सार-तत्त्व उसका चिरस्थायी अंग बन कर रहता है और यही वह चीज है जो जीवन में भगवान् की उपलब्धि करने में उसकी सहायता करती है। यही कारण है कि प्रायः पूर्वजन्मों की बाह्य घटनाओं और अवस्थाओं की स्मृति मनुष्य को नहीं रहती- इस स्मृति को बनाये रखने के लिए इतना सुदृढ़ विकास होने की आवश्यकता है कि मन, प्राण और सूक्ष्म शरीर तक की एक अटूट स्थिति बनी रहे, क्योंकि पूर्वजन्म की सारी बातें यद्यपि एक प्रकार की बीज-रूपा स्मृति में बनी रहती हैं फिर भी साधारणतया बाहर प्रकट नहीं होतीं।

जो दिव्य तत्त्व योद्धा के शौर्य-वीर्य में था, जो कुछ उसकी राजभक्ति, महानुभावता और उच्च साहस के अन्दर अभिव्यक्त हुआ था, जो कुछ दिव्य तत्त्व कवि के सामञ्जस्यपूर्ण मन और उदार प्राण के पीछे विद्यमान था और जो इनके अन्दर व्यक्त हुआ था वह सदा रहता है और कभी-कभी चरित्र के एक नये सामञ्जस्य के अन्दर नये रूप में प्रकट हो सकता है; अथवा अगर जीवन भगवान् की ओर मुड़ जाये तो वह सार-तत्त्व भगवत्प्राप्ति या भगवत्कार्य की सिद्धि के लिए एक शक्ति के रूप में परिणत किया जा सकता है।



दूरदर्शिता

श्रीमां

ज्यों ही उस हिन्दू युवक ने तीर छोड़ा और लक्ष्य-वेध किया त्यों ही एक बोल उठा: "वाह खूब!" किसी ने कहा: "हां, पर अभी तो दिन का प्रकाश है। यह धनुर्धारी निशाना ठीक लगा सकता है, पर दशरथ जैसा होशियार यह नहीं है।"

"वह शब्द-वेधी है।"

"अर्थात्?"

"वह शब्द के सहारे निशाना लगाता है।"

"तुम्हारे कहने का तात्पर्य?"

"वह अंधेरे में तीर चला सकता है। रात में जंगल में जाकर वह आहट सुनता है। पैरों या पंखों की आवाज से जब उसे पता चल जाता है कि उसे किस शिकार को मारना है तो वह तीर चला देता है और इस प्रकार अपने लक्ष्य को वेध लेता है मानों खुले प्रकाश में निशाना साधा हो।"

इस प्रकार अयोध्या के राजकुमार दशरथ की कीर्ति चारों ओर फैल गयी थी। अपनी इस शब्द-वेधी चातुरी पर उसे गर्व था। लोगों के मुंह से अपनी प्रशंसा सुन कर वह प्रसन्न हो उठता था। सांझ होते ही वह अकेला अपने रथ में बैठ कर शिकार की खोज में घने जंगल की ओर चल देता। कभी उसे जंगली भैंसे या नदी पर पानी पीने के लिये आने वाले हाथी के पैरों की आवाज सुनायी देती तो कभी हरिण की हल्की या चीते की सतर्क पद-ध्वनि।

एक दिन रात के समय जब वह झाड़ियों में लेटा हुआ था पत्तियों की खड़खड़ाहट और पानी

के झर-झर शब्द को ध्यान से सुन रहा था, उसे अचानक तालाब के किनारे किसी के हिलने-डुलने की आवाज सुनायी दी। अन्धकार में उसे कुछ सूझ नहीं रहा था, पर दशरथ तो शब्द-वेधी था ना! उसके लिये ध्वनि ही काफी थी। उसने सोचा, निश्चय ही हाथी होगा और उसने तीर छोड़ दिया। तभी एक दर्द-भरी आवाज गूंज उठी जिसे सुन दशरथ उछल पड़ा।

"बचाओ-बचाओ! किसी ने मुझ पर तीर चला दिया।" दशरथ के हाथ से धनुषबाण छूट गया; भय से उसका सिर चकराने लगा। "क्या कर दिया मैंने? जंगली जानवर के धोखे में किसी मनुष्य को घायल कर दिया क्या?" जंगल को चीरता हुआ वह तालाब की ओर लपका। तालाब के किनारे एक युवक रक्त में लथपथ पड़ा था, बाल बिखरे थे। उसके हाथ में एक घड़ा था जिसे भरने के लिये वह वहां आया था।

"तात," वह कराह उठा, "क्या तुमने ही यह घातक बाण छोड़ा था? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था जो तुमने मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया? मैं एक ऋषिकुमार हूं, मेरे वृद्ध माता-पिता अन्धे हैं। उनकी देख-रेख और उनकी सब आवश्यकताओं की पूर्ति मैं ही करता हूं। मैं उन्हीं के लिये पानी लेने आया था, पर अब मैं उनकी सेवा नहीं कर सकूंगा! इस रास्ते से तुम उनकी कुटिया की ओर जाओ और जो कुछ हुआ है उन्हें बता दो। पर जाने से पहले मेरी छाती में से यह तीर निकालते जाओ, इससे मुझे बड़ी पीड़ा हो रही है।"

दशरथ ने घाव में से तीर खींच लिया। युवक ने अंतिम श्वास लिया और प्राण छोड़ दिये।

राजकुमार ने वह घड़ा पानी से भरा और मृतक द्वारा बताये गये रास्ते पर वह चल पड़ा। जैसे ही वह कुटिया के समीप पहुंचा, पिता बोले : "मेरे बच्चे, आज इतनी देर क्यों लगायी? क्या वहां तालाब में स्नान करने लगे थे? हम डर रहे थे कि कहीं तुम किसी विपत्ति में ना पड़ गये होओ। पर तुम उत्तर क्यों नहीं देते?"

कांपती आवाज में दशरथ बोला :

"महात्मन्, मैं आपका पुत्र नहीं हूं। मैं एक क्षत्रिय हूं। मुझे अब तक अपनी धनुर्विद्या पर बड़ा गर्व था। आज रात मैं शिकार की खोज में बैठा था, मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि तालाब के किनारे पर हाथी के पानी पीने की आवाज हो रही है; मैंने तीर छोड़ दिया। अफसोस! वह तीर आपके पुत्र को जा लगा। कहिये, अब किस प्रकार मैं अपने पाप का प्रयश्चित करूं?" दोनों-वृद्ध और वृद्धा-"हाय-हाय" कह कर विलाप कर उठे। उन्होंने राजकुमार से उस स्थान पर उन्हें ले चलने के लिए कहा जहां उनका इकलौता पुत्र पड़ा था। शव के पास पहुंच कर उन्होंने मन्त्र-पाठ किया और उस पर जल छिड़का। तब ऋषि बोले:

"सुन दशरथ! तेरे दोष से हम आज अपने प्यारे पुत्र के लिए आंसू बहा रहे हैं। एक दिन तू भी अपने प्यारे पुत्र के लिए विलाप करेगा। बहुत वर्षों के बाद ऐसा होगा, पर यह दण्ड तुझे अवश्य मिलेगा।" शवदाह के लिए उन्होंने चिता तैयार की, फिर स्वयं भी उसमें बैठ कर जल मरे।

समय बीत चला। दशरथ अयोध्या का राजा हो गया और कौशल्या से उसका विवाह हुआ। फिर उसके यशस्वी राम जैसा सुपुत्र उत्पन्न हुआ।

राजा की दूसरी रानी कैकेयी और उसकी दासी के अतिरिक्त सारी प्रजा राम को प्यार करती थी। उनके कुचक्र के कारण सज्जन राम को चौदह वर्ष के लिए वन भेज दिया गया।

तब दशरथ ने पुत्र के वियोग में उसी प्रकार विलाप किया जैसे उन वृद्ध माता-पिता ने अपने युवक पुत्र के लिए जंगल में विलाप किया था जिसने आधी रात के समय तालाब के किनारे प्रण छोड़े थे।

दशरथ को एक समय अपनी विद्या पर इतना घमण्ड हो गया था कि उसमें ना तो दूरदर्शिता ही रही और ना ही उसने कभी यह सोचा कि अन्धकार में वह किसी मनुष्य को भी घायल कर सकता है। शब्द-वेधी होने के अपने कौशल के लिए ऐसा मूर्खतापूर्ण घमण्ड होने से तो उसके लिए यह कहीं अच्छा होता कि वह केवल दिन के प्रकाश में ही तीर चलाने का अभ्यास करता। यह ठीक है कि वह किसी को हानि पहुंचाना नहीं चाहता था, पर वह था अदूरदर्शी।

एक बार दो बूढ़े गिद्ध बड़े कष्ट की अवस्था में थे। बनारस के एक सौदागर को उन पर दया आयी और वह उन्हें एक सूखी जगह में ले गया। उन्हें गर्मी पहुंचाने के लिए उसने आग जलायी और मृत जानवरों को जहां जलाया जाता है वहां से मांस के टुकड़े लाकर उनका उदरपोषण किया। जब वर्षा ऋतु आयी, वे गिद्ध पर्वतों की ओर उड़ गये। वे अब खूब स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट हो गये थे।

बनारस के सौदागर के उपकार का बदला चुकाने के लिए उन्होंने निश्चय किया कि जो भी वस्त्र उन्हें गिरा पड़ा मिलेगा उसे उठा कर अपने दयालु मित्र को देंगे। वे एक घर से दूसरे घर,

एक गांव से दूसरे गांव उड़ते हुए जाते और जो वस्त्र बाहर हवा में सूखने को पड़ा होता उसे उठा लाते और सौदागर के घर में छोड़ आते। सौदागर उनके सदाशय का मान तो करता था पर उन चुराये हुए कपड़ों को ना तो वह अपने किसी व्यवहार में लाता था और ना ही उन्हें बेचता था। वह उन्हें केवल सम्भाल कर रख देता था।

इन दो गिद्धों को पकड़ने के लिए सब स्थानों पर जाल लगाये गये। एक दिन उनमें से एक पकड़ा गया। वह राजा के सामने लाया गया। राजा ने उससे पूछा : "तुम मेरी प्रजा की चोरी क्यों करते हो?" पक्षी ने उत्तर दिया, "एक सौदागर ने मेरी और मेरे भाई की जान बचायी थी। उसी

का ऋण चुकाने के लिए हमने ये वस्त्र उसके लिए इकट्ठे किये हैं।"

अब सौदागर से पूछताछ की बारी आयी। उसे भी राजा के सामने लाया गया। वह बोला : "मालिक, गिद्धों ने सचमुच ही मुझे बहुत-से वस्त्र लाकर दिये हैं, पर मैंने उन सबको सुरक्षित रखा है। मैं उन्हें उनके स्वामियों को लौटाने के लिए तैयार हूं।"

राजा ने गिद्धों को क्षमा कर दिया क्योंकि उन्होंने यह कार्य प्रत्युपकार के लिए किया था, पर उनमें विचार शक्ति का अभाव था। सौदागर को भी इसके लिए कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ा क्योंकि उसमें वह दूरदृष्टि थी।



26 मार्च आध्यात्मिकता का शुभ दिन

रविन्द्र (‘माताजी और श्री अरविन्द’ से)

जब मीरा की श्री अरविन्द के साथ भेंट हुई। मीरा यह देखकर दंग रह गई कि उनके सामने खड़े हुए श्री अरविन्द और कोई नहीं; उनके अंतर्दशनों के ‘श्रीकृष्ण’ ही थे। वही रूप, वही आकार और वही वेश-भूषा। माताजी ने इससे पहले किसी को धोती-चादर पहने नहीं देखा था। उनका ख्याल था कि शायद वह सूक्ष्म जगत् का वेश है। इस अनुपम भेंट के बारे में मानव लेखनी कह ही क्या सकती है? हाँ, इसके अगले दिन 30 मार्च, 1914 को मीरा ने लिखा-

“उनकी उपस्थिति में- जो तेरे पूर्ण सेवक हैं, जो तेरी उपस्थिति की पूर्ण चेतना उपलब्ध कर चुके हैं- मैंने यह अतिशय रूप में अनुभव किया कि मैं अभी जो चरितार्थ करना चाहती हूँ उससे दूर, बहुत दूर हूँ और अब मैं जान गई हूँ कि जिसे मैं उच्चतम, श्रेष्ठतम और पवित्रतम समझती हूँ, वह उस आदर्श की तुलना में, जिसे अब मुझे मानना होगा, अन्धकार और अज्ञान है। परन्तु यह अनुभव, निरुत्साहित करना तो दूर रहा, अभीप्सा एवं साहस को तथा सब बाधाओं को

चीरकर- जीतकर अन्त में तेरे विधान और तेरे कर्म के साथ तद्रूप हो जाने के संकल्प को प्रेरित तथा पुष्ट करता है”

“थोड़ा-थोड़ा करके आकाश स्पष्ट होता जा रहा है, रास्ता साफ़ होने लगा है और हम उत्तरोत्तर अधिक निश्चयात्मक ज्ञान में बढ़ते जा रहे हैं।”

“अधिक चिन्ता नहीं अगर सैकड़ों मनुष्य भी घने अन्धकार में डूबे हुए हैं। वे, जिन्हें हमने कल देखा- वे तो पृथ्वी पर ही हैं। उनकी उपस्थिति इस बात का काफ़ी प्रमाण है कि एक दिन आयेगा जब अन्धकार प्रकाश में परिवर्तित हो जायेगा, जब तेरा राज्य पृथ्वी पर कार्य-रूप में स्थापित होगा।”

“हे नाथ, इस आश्चर्य के दिव्य रचयिता, जब मैं इसका चिंतन करती हूँ तो मेरा हृदय आनन्द और कृतज्ञता से उमड़ उठता है और मेरी आशा असीम हो जाती है।”

“मेरा आदर शब्दातीत हो जाता है, मेरी अर्चना गम्भीर हो जाती है।”



अपनी त्रुटियों को ठीक करना

श्री माँ

अपने अंदर सावधानी से देखो और यह देखो कि सत्ता का कौन-सा भाग विद्रोह करता है और सहयोग देने से इंकार करता है ताकि शक्ति का उपयोग हो सके। तुम देखोगे, तुम्हें उस भाग को पहचान सकना चाहिये जो सहमत नहीं है, फिर तुम्हें कारण जानने के लिये ज्यादा भीतर जाना चाहिये। उसके बाद तुम यह क्रिया करोगे: उसमें शांति और शक्ति उंडेल दो ताकि वह बदल जाये। एक बार जब तुम निश्चय कर लो कि तुम्हारी सत्ता में किसी चीज को तुम्हारी बाहरी अभीप्सा का विरोध ना करना चाहिये फिर तुम्हें अपने हाथ में जो भी उपाय हों उन सबका, यहाँ तक कि बल का भी उपयोग करना चाहिये ताकि उससे पिंड छुड़ा सको। तब चिंता की कोई बात ना रह जायेगी। उपलब्ध करने के संकल्प के साथ हर चीज पर विजय पाने की शक्ति आ जाती है। जो कुछ रास्ते में अड़ंगा लगाये था वह गायब हो जाता है, लेकिन तब तुम्हारे अंदर ऐसी संकल्प-शक्ति होनी चाहिये या विकसित करनी चाहिये जो किसी चीज को, किसी भी चीज को स्वीकार ना करे, इधर-उधर ना करे।

मैं केवल यही चाहती हूँ। यह इतना स्पष्ट है जितना सूर्यलोक। तुम्हें इधर-उधर हिलना-डुलना ना चाहिये, समझे? एक बार तुमने निश्चय कर लिया तो फिर सच्चाई के साथ सतत अभीप्सा करो ताकि वह तुम्हारे जीवन की सबसे महत्वपूर्ण चीज बन जाये। मैं पूछती हूँ, ऐसी कौन-सी चीज है जिसे हम चरितार्थ नहीं कर सकते? हम

सब कुछ पा सकते हैं, सब कुछ। शुरू करने के लिये पहले तुम एक चीज को ले लो और उस पर अथक परिश्रम करते चलो जब तक कि तुम उसे प्राप्त कर ना लो। तुम विशेष संकल्प के साथ, आग्रहपूर्वक निश्चय के साथ उसका पीछा करो यहाँ तक कि तुम उस पर अधिकार पा लो, फिर दूसरी चीज को लो। हमेशा भगवान् के बारे में सचेतन रहो और यह याद रखो कि केवल वही बाधाओं पर विजय पा सकते हैं और हमें लक्ष्य तक पहुंचा सकते हैं।

अपने अंदर किसी त्रुटि या दुर्बलता को ठीक करने के लिये तुम्हें दृढ़तापूर्वक बल के साथ और सदा के लिये उसे अपने अंदर से निकाल बाहर करने के निश्चय के साथ उसका पीछा करना चाहिये अथवा अपने-आपको आध्यात्मिक चेतना में बढ़ाने के लिये तुम उसी उत्साह के साथ बाधा को उसी तरह पार करो। तुम यह निश्चय करो कि इन चालाकियों को दोहराने ना दिया जायेगा। एक बार बिना जाने तुम दीवार से टकरा सकते हो या कोई भूल कर सकते हो लेकिन उसे फिर से करना लज्जाजनक और अक्षम्य है। चाहे वह एक विचार हो जिससे तुम पिंड छुड़ाना चाहते हो या किसी आवेश को जीतना चाहते हो, तुम्हें उसका सामना उसी उत्साह और तीव्रता के साथ करना चाहिये ताकि उसे सदा के लिये कठोरता के साथ पूरी तरह निकाल बाहर कर सको। सचमुच ये सुझाव बड़े चालाक होते हैं, बहुत चंट होते हैं। वे नपी-तुली चालाकियां निकाल लेते हैं

और अपने-आपको मोहक, आकर्षक रूप में मढ़ लेते हैं। वे यह बहुत मधुर और सूक्ष्म रीति से करते हैं ताकि हमारा ध्यान खींच सकें, हमें लुभा सकें और हमारा ऐसा उपयोग कर सकें जिससे हम ऐसे जाल में जा गिरे जिसमें से निकलना कठिन हो और उनके दास बन जायें।

उनका रूप-रंग बहुत सौम्य होता है, उन्हें हमारी दुर्बलताओं का लाभ उठाना अच्छी तरह से आता है। वे अविश्वसनीय होते हैं, उनमें ऐसा अध्यवसाय होता है जो धैर्यपूर्ण और जागरूक होता है। इसलिये तुम्हें बहुत ज्यादा सावधान और ईमानदार होना चाहिये। तुम्हें सावधान रहना और इन अशुभ और विनाशक सुझावों से अपने-आपको दूर रखना चाहिये। वे संकटपूर्ण और सचमुच बुरे होते हैं और हमें मोहित करने के लिये मोहक मुखौटे पहने रहते हैं।

मैं तुमसे कहती हूँ कि ये छोटे-छोटे सुझाव होते हैं जो तुम्हें सलाह देते हैं, वे किसी संत से सहज कोमलता के साथ कहते हैं, अरे यह कुछ नहीं है, तुम इसे फिर से कर सकते हो, यह कोई त्रुटि नहीं है, चलो कुछ नहीं होगा, जरा कोशिश करके तो देखो। हम बहुत दूर तक नहीं जायेंगे, पहली बार की तरह इस बार शिकार ना बनेंगे। बस जरा कोशिश करके देखो, ऊपर सतह पर ही मत देखो और हम गहराई में जाने से पहले अपने-आपको अलग कर लेंगे, लो, जरा हिम्मत करो, आखिर यह इतनी बड़ी चीज नहीं है। तुम्हें मूर्खताभरी चीजों की ओर धकेलने वाले ये मानसिक और प्राणिक सुझाव अद्भुत होते हैं। एक बार तुम इन हास्यजनक सुझावों के आगे झुक जाओ जो तुम्हें यह कहकर लुभाते हैं कि तुम्हारे अंदर साहस क्यों नहीं है, तुम हिम्मतवाले

नहीं हो, तुम प्रयास तक नहीं करना चाहते, चलो बढ़ो, तुम अब बच्चे नहीं हो। तुम हमें यह क्यों नहीं दिखाना चाहते कि तुम क्या कर सकते हो, क्या करने योग्य हो, है ना? इस भाँति बहुत-से सुझाव आयेंगे, सलाहें आयेंगी। अगर कहीं तुम उनकी दिशा में एक छोटा-सा कदम भी बढ़ाओ. अगर उनकी बात पर जरा भी कान दो और जरा-सी भी कोशिश करो तो मैं कहती हूँ बंटाधार हो जायेगा। जरा-सा प्रयास करने की जगह कोई चीज तुम्हें धक्का देगी और तब तक धक्का देती जायेगी कि तुम इस दुःख-दैन्य भरी स्थिति से बाहर निकलने लायक ना रहोगे और कीचड़ से ढक जाओगे।

एक बार तुम इन प्रभावों के तले आ जाओ तो तुम रसातल में खिंचे चले जाओगे; फिर तुम चाहे जितना प्रयास करो उन छोटी-छोटी चीजों से पिंड ना छुड़ा सकोगे जो बड़े लोभ के साथ तुम्हें घेरे रहती हैं और जरा-सा अवसर पाते ही तुम्हारी पीठ पर कूद पड़ने के लिये तैयार रहती हैं। तो स्थिति ऐसी है। सारे समय कुछ शक्तियाँ हमारे ऊपर जासूसी करती रहती हैं, हम पर निगरानी रखती हैं और जरा-सा भी अवसर पाने के लिये, जरा-सी भी छेद हो तो वे तुरंत बदले के भाव के साथ आक्रमण कर देती हैं। जैसे ही तुम योग शुरू करते हो या अपने-आपको शुद्ध करने की कोशिश करते हो तो ये शक्तियाँ हमेशा तुम्हारे काम में विघ्न-बाधा डालने के लिये आ जाती हैं। ये अजीब हैं। ये आश्चर्यजनक होती हैं और हमारी चेतना को नीचा करने के लिये प्रभावशाली उपाय ढूँढ़ निकालती हैं। तुम्हें सावधान रहना चाहिये और इन दुर्भावनापूर्ण सुझावों से बचना चाहिये। जब तक एक भाग भी ऐसा हो जो केंद्रीय सत्ता

की आज्ञा नहीं मानता तब तक रूपांतर का काम नहीं हो सकता, जारी नहीं रह सकता-सत्ता के सभी भागों को शुद्ध करना होगा और उन्हें केवल केंद्रीय सत्ता सत्ता की आज्ञा माननी चाहिये।

भागवत उपस्थिति को पाने के लिये केवल यही चीज हमारी सहायता कर सकती है- अपने-आपको भगवान् के हाथों में छोड़ दो और उन्हीं से पथ प्रदर्शन लो- बस यही एकमात्र सहारा है।



लक्ष्य-प्राप्ति

चाहे तपस्या द्वारा हो या समर्पण द्वारा, इसका कोई महत्व नहीं है, महत्वपूर्ण बस यही चीज है कि व्यक्ति दृढ़ता के साथ अपने लक्ष्य की ओर अभिमुख हो। जब एक बार कदम सच्चे मार्ग पर चल पड़े तो कोई वहाँ से हटकर ज्यादा नीची चीज की ओर कैसे जा सकता है ? अगर आदमी दृढ़ बना रहे तो पतन का कोई महत्व नहीं, आदमी फिर उठता है और आगे बढ़ता है। अगर आदमी अपने लक्ष्य की ओर दृढ़ रहे तो भगवान् के मार्ग पर कभी अन्तिम असफलता नहीं हो सकती। और अगर तुम्हारे अन्दर कोई ऐसी चीज है जो तुम्हें प्रेरित करती है, और वह निश्चित रूप से है, तो लड़खड़ाने, गिरने या श्रद्धा की असफलता का परिणाम में कोई महत्वपूर्ण फर्क नहीं पड़ेगा। संघर्ष समाप्त होने तक चलते जाना चाहिये। सीधा, खुला हुआ और कंटकहीन मार्ग हमारे सामने है।

श्री अरविन्द

पिछले अंक में आपने करुणा दीदी के बारे में रंगम्मा दीदी, श्री सुरेन्द्र शर्मा, रजनीश जी व पंडित विजय शंकर मिश्रा के उदगार पढ़े। इस अंक में श्री प्रांजल जौहर का करुणा दीदी के प्रति प्रेम व श्रद्धा आपके सम्मुख रख रही हूँ। इसमें हमें करुणा दीदी के बहुआयामी व्यक्तित्व की एक झलक मिलती है। करुणा दीदी सदा ही हमारे लिये प्रेरणा का स्रोत रही हैं और रहेंगी।

रूपा गुप्ता

प्रांजल जौहर: यद्यपि करुणा दीदी के बारे में लगभग सभी ने बहुत कुछ कहा है लेकिन अपने बचपन से करुणा दीदी के साथ जो मेरा साथ रहा है, उस नितान्त अपने संग के अनुभव से मैं यही कह सकता हूँ कि करुणा दीदी में श्री अरविन्द योग के तीनों रूपों का समस्वर सामंजस्य था। ना केवल संगीत वरन भक्तियोग सहित हर रूप में वे एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व थीं।

कर्मधारा और कॉल बियांड में कार्य करते हुए उनका पूरा ध्यान इस बात पर रहता था कि एक अर्धविराम भी गलत ना लगे। उन दिनों कम्प्यूटर नहीं होते थे तो एक अर्धविराम के कारण भी पूरा कार्य फिर करना पड़ता था, लेकिन वे उसे ऐसे ही नहीं छोड़ती थीं। एक बार मैं उनके पास गया और कहा- 'करुणा दी, मैं आपसे संगीत सीखना चाहता हूँ। उन्होंने कहा ठीक है, 'मैं तुम्हें सिखाऊंगी।' उन्होंने 'चलो मन गंगा यमुना तीर' से शुरू किया, दो घंटे और वही दो पक्तियाँ मैं जैसे ही राग पकड़ने का प्रयत्न करता, हर बार शुरू करते हुए वे एक नये राग से प्रारम्भ कर देती थीं और यह मेरे लिये बहुत मुश्किल था। मैंने उनसे पूछा आपने संगीत कैसे सीखा और तब मुझे समझ आया कि संगीत उनकी प्रकृति में था। बचपन से ही उनका सारा जीवन संगीतमय था।

कभी आश्रम के कार्यों की रूपरेखा बनाते समय, जब हमारा सारा ध्यान कार्य पर ही होता था, वे उसमें आध्यात्मिकता और उच्च विचारों का समन्वय कर देती थीं। उस समय कुछ आश्रम से बाहर के लोगों को ऐसा भी लगता था कि वे मूल कार्य पर एकाग्रता से अलग हट कर बात कर रही हैं लेकिन हम समझ जाते थे कि वे नहीं, हमने ही अपने कार्य के पीछे की मूल भावना, उसके सार तत्व को कहीं पीछे छोड़ दिया था, और ये वही थीं जो हमें आध्यात्मिकता और कर्मयोग के समन्वय, जो हमें 'गीता' में भगवान ने बताया पर वापस ले आती थीं। मुझे उनकी गजल गायकी के बारे में जानकारी नहीं थी लेकिन एक बार जब 1983 में नैनीताल में विश्वविद्यालय का फंक्शन था, हम वहाँ गये और वे प्रातः तीन बजे तक गजल गाती रहीं, और एक भी श्रोता, वहाँ से हिलने को तैयार नहीं था। सब मन्त्रमुग्ध बैठे रहे। वे वास्तव में अपने उपनाम के अनुरूप गजल क्वीन थीं।

मैंने जब उनसे पूछा कि अब आप गजल क्यों नहीं गातीं तो उन्होंने बहुत सहज भाव से कहा: "नहीं, अब भजन ही मेरा जीवन है।"

जब दिल्ली आश्रम के ध्यान कक्ष के पुनर्निर्माण की बात आयी तो हमें लगा इसका पुनर्निर्माण सम्भव नहीं है। हमें इसे तोड़कर पुनः बनाना होगा। मैं तारा दीदी के पास गया तो उन्होंने कहा, "करुणा दी से पूछो, वे शायद तैयार नहीं होंगीं।" मैं करुणा दी के पास गया तो उन्होंने बहुत दार्शनिक तरीके से कहा, "दिल्ली सात बार टूट कर पुनः बनी है तुम ध्यान कक्ष के लिये ऐसा क्यों नहीं कर सकते।" मुझे आश्चर्य हुआ क्यों कि मुझे लगता था कि उनका ध्यान कक्ष से बहुत लगाव था, लेकिन मुझे समझ आया कि यह मेरा

ही लगाव था जबकि वे सब भौतिक चीजों से उपर थीं। हम भारत में यहाँ किसी को संत घोषित नहीं करते लेकिन यदि करते तो हम कह सकते हैं कि करुणा दी एक पूर्ण संत थीं। उनमें एक संत की सब विशेषतायें थीं, कहीं कोई कमी नहीं थी। मैं यहाँ सभी उपस्थित लोगों का धन्यवाद

करना चाहूंगा और चाहूंगा कि बुद्ध और जीसस की तरह हम भी करुणा दी ने जो कुछ आश्रम के लिये और हमारे लिये किया उसको अपने जीवन में उतार सकें, एक दूसरे की सहायता करें और उनके संगीत और आध्यात्मिकता को आगे बढ़ाते रहें।



कर्म और ध्यान

काम-धंधे और सर्जनात्मक कार्य में तुम जो समय लगाते हो उस पर तुम्हें पछताने की कोई जरूरत नहीं। जिन लोगों का प्राण विस्तारशील एवं सर्जनकारी होता है या कर्म करने के लिये ही बना होता है उनके विकास के लिये सर्वोत्तम अवस्था साधारणतया यही होगी कि वे अपने प्राण की प्रवृत्ति दमन ना करें। वे अन्तर्निरीक्षणात्मक ध्यान की अपेक्षा इस कर्म-मार्ग से ही अधिक शीघ्र उन्नति कर सकते हैं।

आवश्यक यही है कि वे समर्पणभाव से कर्म करें ताकि वे इस बात के लिये अधिकाधिक तैयार हो जायें कि जब भागवती शक्ति उन्हें चलाये तो वे उसका अनुभव और अनुसरण कर सकें। यह विचार अशुद्ध है कि हर समय अन्तर्निरीक्षणात्मक ध्यान में रहना ही योग का सदा-सर्वदा सर्वोत्तम या एकमात्र मार्ग है।

श्री अरविन्द

भवानी मंदिर

(श्रीअरविंद सेंटेंनरी वाल्यूम, प्रथम खंड)

भवानी कौन हैं?

असीम शक्ति का नाम भवानी है। संसार के अनंत प्रवाह में, अनादि का चक्र बड़ी तेजी से घूमता है। अनादि भगवान् से निकलने वाली असीम शक्ति ही चक्र को चलाती है। मनुष्य की दृष्टि में वह अलग-अलग आकारों और अनंत रूपों में दिखायी देती है। हर एक आकार एक नया युग बनाता है। कभी वही शक्ति प्रेम का रूप लेती है कभी ज्ञान का, कभी वह त्याग होती है कभी दया। यही असीम शक्ति भवानी है, यही दुर्गा है, यही काली है और राधा प्यारी भी यही है। यही लक्ष्मी है, यही हमारी माँ और सारी सृष्टि को बनानेवाली है।

माँसारे संसार में शक्ति रूप से भरती जा रही हैं

हम आंख उठाकर दुनिया में जिधर नजर दौड़ाये उधर ही शक्ति के पुंज उठते हुए दिखायी देते हैं। चारों ओर शक्ति की बाढ़ आयी हुई है। युद्ध की शक्ति, धन की शक्ति, विज्ञान की शक्ति, पहले से दस गुनी बलवान्, सौगुनी भयंकर, तेज और कार्य व्यस्त हैं और हजारों गुना अधिक साधन-संपन्न हैं। आज जितने अस्त्र-शस्त्र दिखायी देते हैं ऐसे इतिहास में कभी देखे या सुने तक नहीं गये। हर जगह माँ काम कर रही हैं। उनके शक्तिशाली हाथों से गढ़े जाकर राक्षसों, असुरों और देवों के अनंत रूप धरती के मैदान में कूद रहे हैं। हमने धीमी गति से पश्चिम के महान् साम्राज्यों को उठते

हुए देखा है। हमने तेज गति से जापान में प्रचंड शक्ति को मूर्त रूप लेते हुए देखा है। कुछ भ्रष्ट शक्तियाँ हैं जो अपनी शक्ति के बादलों से घिरी हैं, तामसिक या राजसिक प्रभाव के कारण काले या लाल रंग में रंगी हैं। कुछ आर्य शक्तियाँ हैं जो त्याग और आत्मबलिदान की पवित्र ज्वाला में से निकली हैं। रंग-रूप चाहे जैसा हो सबमें माँ अपने रूप में आकार गढ़ती और सृष्टि करती जा रही हैं। वे पुरानों में अपनी आत्मा उंडेल रही हैं। नयों में जीवन का चक्र चला रही हैं।

शक्ति के बिना हमारा ज्ञान मरी हुई चीज है

क्या ज्ञान की कमी है? हम भारतीय एक ऐसे देश में पैदा हुए हैं जहाँ मनुष्यजाति के आरंभ से ही ज्ञान इकट्ठा होता आ रहा है। हजारों बरसों से प्राप्त किया लाभ हमें यूँ ही मिल जाता है। आज भी हमारे अंदर बड़े-बड़े ज्ञानी पैदा होते हैं जो हमारे ज्ञान के पुराने भंडार को बढ़ाते रहते हैं। हमारी योग्यता कम नहीं हुई है, हमारी बुद्धि की धार मोथरी नहीं हुई है। उसकी ग्रहण शक्ति में और उसके लचीलेपन में कोई फर्क नहीं आया है। लेकिन हमारा ज्ञान मृत ज्ञान है, एक भार है जिसके नीचे हम झुके जा रहे हैं, एक जहर है जो हमें खाये जा रहा है। होना तो यह चाहिये था कि यह ज्ञान हमारे पैरों को सहारा देनेवाली लकड़ी होता, हमारे हाथों का हथियार होता, लेकिन जब बड़ी चीजों का उपयोग नहीं होता या दुरुपयोग

होता है तो वे उलटकर गलत उपयोग करने वाले पर ही टूट पड़ती हैं और उसे नष्ट कर देती हैं। तमस् से लदा हुआ हमारा ज्ञान नपुंसकता और व्यर्थता के शाप का शिकार है।

आजकल हम यह मान लेते हैं कि हम विज्ञान सीख लें तो सब कुछ ठीक हो जायेगा। हम पहले अपने आप से पूछ सकते हैं कि हमारे पास जितना ज्ञान है उसका हमने क्या उपयोग किया है? हममें से जिन लोगों ने साइंस सीखी है उनमें से कितनों ने देश का कितना भला किया है? हम कुछ मौलिक काम करने योग्य नहीं हैं, नकल करना ही हमारा गुण है। पहले हम अंग्रेजों की नकल करते थे अब जापान की नकल करेंगे। जब उसमें सफल ना हो पायें तो भला इसमें क्या सफल होंगे! यूरोपीय साइंस से प्राप्त ज्ञान दानव के हाथों का हथियार है, भीमसेन की गदा है। अगर कोई कमजोर आदमी उसे उठाने की कोशिश करे तो वह अपने-आप चकनाचूर हो जायेगा।

हम भारतीय शक्ति के अभाव के कारण ही हर चीज में असफल रहते हैं

भारत में सांस धीमी चलती है, प्रेरणा आने में देर लगती है। भारत - प्राचीन भारत - मां नया जन्म लेने की कोशिश कर रही हैं लेकिन यह कोशिश बेकार है। आखिर उसे रोग क्या है? वह कितनी विशाल है! इतनी ही शक्तिशाली भी तो हो सकती है! कहीं कोई बड़ी कमी है, कोई खास दोष है। उसे पकड़ पाना भी कठिन नहीं है। हमारे अंदर सब कुछ है, सिर्फ शक्ति की, ऊर्जा की कमी है। हमने शक्ति को छोड़ दिया है और इसलिये शक्ति ने भी हमें छोड़ दिया है। हमारे हृदय में, हमारे मस्तिष्क में, हमारी भुजाओं में

मां नहीं हैं। नये जन्म के लिये हमारे अंदर इच्छा है और बहुत है। कितने प्रयास किये जा चुके हैं। कितने धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन शुरू किये जा चुके हैं। लेकिन सबका एक ही परिणाम रहा या होने को है। थोड़ी देर के लिये वे चमक उठते हैं, फिर प्रेरणा मंद पड़ जाती है, आग बुझ जाती है और अगर वे बचे भी रहें तो खाली सीपियों या छिलकों के रूप में रहते हैं, जिनमें से ब्रह्म निकल गया है या वे तमस् के वश में हैं। हमारे प्रारंभ महान् होते हैं लेकिन ना तो उनका परिणाम आता है ना फल।

अब हमने एक नयी दिशा पकड़ी है। हमने उद्योग शुरू किये हैं ताकि गरीब देश का उत्थान और नया जन्म हो सके। हमने अनुभव से कुछ नहीं सीखा है। हम यह नहीं देख पाते कि अगर हमने शक्ति प्राप्त ना की, जो कि सबसे पहली आवश्यकता है, तो यह धारा भी उसी दिशा में जायेगी। हममें से बहुत-से तमस् में डूबे हुए हैं, अंधकारमय जड़ता के राक्षस के शिकार हैं और कहते हैं, 'यह सब असंभव है, भारत खत्म हो चुका, उसमें ना रक्त है ना प्राण। अब उसका उठना असंभव है। वह बहुत ही कमजोर है और अब उसका विनाश निश्चित है।' लेकिन यह मूर्खताभरी बेकार बातें हैं। किसी भी मनुष्य या जाति के कमजोर होने की जरूरत नहीं है, यह अपने चुनाव पर निर्भर है। किसी भी मनुष्य या जाति के नष्ट होने की जरूरत नहीं है, जबतक कि वह अपने-आप जान-बूझकर नष्ट होना ना चाहे।

शक्ति प्राप्त करने के लिये हमें शक्ति माता की पूजा करना होगी

आज हमारी जाति को आवश्यकता है शक्ति, शक्ति और अधिक शक्ति की। लेकिन अगर हम शक्ति चाहें तो उसे शक्ति-पूजा के बिना कैसे पा सकते हैं? उन्हें अपने लिये हमारी पूजा की कोई जरूरत नहीं है। वे पूजा की मांग करती हैं ताकि उसके द्वारा वे हमारी मदद कर सकें और अपने-आपको हमें दे सकें। यह कोई कपोल-कल्पना या वहम नहीं है। यह संसार

का साधारण नियम है, देवता बिना मागे अपने-आपको नहीं दे सकते। शाश्वत् भी मनुष्यों के पास अनजाने में नहीं आता। हर भक्त अपने अनुभव से जानता है कि परमात्मा अपने अनिर्वचनीय सौंदर्य और आनंद के साथ तभी प्रकट होते हैं जब हम उनका आवाहन करें। जो बात परमात्मा के बारे में ठीक है वही उनकी शक्ति के बारे में भी ठीक है।



वर दे

विश्वनाथ शर्मा

श्रीमाँ! विमल बुद्धि वर दे ।

हिमगिरि जैसा हो विशाल मन नील जलधि सी हो गहराई।

शान्ति प्रेम का पथ प्रशस्त हो विमल कीर्ति वर दे । श्रीमाँ।

मानवता पनपे घर-घर में, दानवता हर ले ।

विश्व एक हो, जाति एक हो, नवल स्वप्न भर दे । श्रीमाँ ।

सद्भावना बढ़े माँ जग में, मैत्री हो सारे देशों में ।

धन बल सीमा भेद मिटें, जग प्रेमाश्रित कर दे । श्रीमाँ ।

शोषण क्लेश मिटें धरती से, बँधुआ रहे ना कोई मानव ।

बनें विकासोन्मुख बालक सब, इन्हें अभय कर दे । श्रीमाँ ।

नारी जाति ना हो अपमानित, जग की बालायें हों विकसित ।

अखिल विश्व नारी समाज को अतुल ज्ञान बल दे । श्रीमाँ ।

वैज्ञानिक जन खोज करें नित कृषि उद्योग सकल हों विकसित ।

साधन अरु सुख का वर्धन हो, नव जागृति भर दे । श्रीमाँ ।

सहअस्तित्व भाव हो जग में समता हो औ भाई चारा

विश्व प्रेम को अखिल विश्व में दिग दिगन्त भर दे ।

श्रीमाँ ।

स्थायी - स्थान

सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फ़कीर'

आकाशवाणी लोगों को इण्टरव्यू के लिए बुलाती रहती है। वे सब लोग आर्टिस्ट कहलाते हैं। चाहे तबला या बाँसुरी बजाने वाले हों, गाने वाले हों या ग़ज़लें सुनाने वाले, आकाशवाणी का कोई प्रमुख व्यक्ति उनसे बातचीत करता है और उनकी खाल उधेड़ता है।

अभी-अभी एक व्यक्ति का इण्टरव्यू हो रहा था उससे पूछा जा रहा था कि

'तुम्हारा नाम क्या है? उसने कहा, 'असदुल्ला ख़ाँ।'

'तुम्हारी उम्र क्या है?' 'वह कहने लगा, 'छत्तीस वर्ष।'

'तुम ख़्याल गायकी कब से सीख रहे हो?'

'बचपन से। जब मैं बहुत छोटा था।'

'गायन-विद्या तुमने किससे सीखी है?'

'पहले तो अपने वालिद साहब से। हमारे घर में संगीत का अच्छा माहौल था। फिर उस्ताद सादिक हुसैन साहब से लगातार दस बरस उनके कदमों में बैठकर सीखी है।'

'संगीत-गायकी में आप क्या-क्या जानते हैं?'

'मैं भजन कीर्तन, पक्का गाना, कच्चा गाना, ख़्याल गायकी, ध्रुपद, धमार ग़ज़लें वग़ैरा: सब गा लेता हूँ।'

'नहीं जी, आप रहने वाले कहाँ के हैं?'

'कहा ना! जहाँ जगह मिल जाये। वैसे अब तो मैं दिल्ली में ही रहता हूँ और आपके पास इण्टरव्यू

के लिए आया हूँ।' इण्टरव्यू के बाद आप कहाँ जायेंगे?'

'जी, मैं इण्टरव्यू के बाद मैं जहाँ पहुँच जाऊँगा वही रहना शुरू कर दूँगा।'

'आपका घर कहाँ है?'

'मेरा घर तो वहीं होता है जहाँ मैं होता हूँ।'

'आपके वालिद मियाँ कहाँ रहते हैं?'

'उनका भी यही हाल था। जहाँ कहीं जाते थे वहीं रहना शुरू कर देते थे। परन्तु अब तो उनका इन्तकाल हो गया है।' आकाशवाणी के अफसर ने झल्लाहट को दबाते हुए पूछा- 'जनाब फ़नकार साहब आपका घर कहाँ है?'

'घर तो मैंने पहले ही कहा वहीं हो जाता है जहाँ पहुँच जाता हूँ।'

'भाई! आपका स्थायी घर कहाँ है?'

तो कलाकार कहने लगा- 'मेरा स्थायी घर तो अल्लाह के फ़जल से बना नहीं है जनाब। जब मेरी क़ब्र खुद जायेगी और उसमें मुझे दबा दिया जायेगा तब वहीं मेरा स्थायी घर होगा। हम फ़िज़ूल इस संसार में अपने मकान बनाने की कोशिश करते रहते हैं।'

बेचारा इण्टरव्यू करने वाला अफसर सिर खुजाता रह गया।

(नोट: मुसलमान का तो फिर भी अन्त में हश्र के दिन तक स्थायी घर होता है परन्तु हिन्दू को तो फूँककर-जलाकर उसकी राख भी उड़ा दी जाती है।

करुणा दीदी

श्रीमती शील भोला

करुणा दीदी को कौन नहीं जानता। बच्चे, बड़े सब उन्हें प्यार से दीदी कह कर बुलाते थे। उन्होंने अपना पूरा जीवन श्री अरविन्द आश्रम में बिताया और निः स्वार्थ भाव से सेवा की। दीदी बड़े ही शांत स्वभाव की थी, जीवन से पूरी तरह संतुष्ट। किसी से कोई शिकायत नहीं। चेहरे पर हमेशा मुस्कराहट। उनका व्यक्तित्व ही ऐसा था कि हर कोई उनकी तरफ खिंचा चला आता था। वह सब की आदरणीय थीं।

वह आर्यसमाज को मानती थीं। आश्रम में कोई भी विशेष दिन हो या अवसर हो, उनके नेतृत्व में ही हवन का आयोजन होता था। उनका जीवन संगीत में पूरी तरह डूबा हुआ था। भले ही वह कितनी भी व्यस्त क्यों ना हो, रियाज के लिये समय निकाल ही लेती थी। केवल शास्त्रीय संगीत ही नहीं, भक्ति संगीत, सूफी संगीत, गज़ल, पंजाबी गीत व देश भक्ति के गीत सभी में उन्हें महारथ हासिल थी। 15 अगस्त हो, 26 जनवरी हो या कोई अन्य विशेष कार्यक्रम हो उनकी मधुर आवाज में वन्दे मातरम व प्रयाण गीत सुनकर लोग जोश से भर जाते थे और उनके साथ स्वर में स्वर मिलाकर गाले लगते थे।

वह नियमित रूप से ध्यान कक्ष में जाती थीं और अपनी मधुर आवाज से लोगों को मंत्र मुग्ध कर देती थीं। उन्होंने आश्रम व मातृ अंतर्राष्ट्रीय

विद्यालय में ना जाने कितने ही बच्चों को संगीत की शिक्षा दी और उन्हें आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। संगीत के क्षेत्र में उनके अनुभव के कारण उनकी छत्रछाया में मातृकला मन्दिर आज किन ऊँचाइयों को छू रहा है। उन्हें अनेक भाषाओं का ज्ञान था। कोई भी विषय हो, वह लोगों का सही मार्ग दर्शन कराती थीं। सादाजीवन, उच्च विचार, दया भाव, सहज स्वभाव, दृढ़ और धैर्य, संकल्प, प्यार व आत्मविश्वास इतने सारे गुण लेकिन अभिमान से वह कोसों दूर थीं। सही मायने में वह एक साध्वी से कम नहीं थी। उनकी जितनी भी प्रशंसा की जाए उतनी ही कम है। उनका व्यक्तित्व ही ऐसा था कि भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी उनके अनेक शिष्य थे जिन्होंने उनसे शास्त्रीय संगीत की शिक्षा ली थी। वे लोग उन्हें श्रद्धाजंली देने के लिए इतनी दूर-दूर से आए थे। वे सब लोग खुशनसीब थे जो उनके संपर्क में थे। हम भी अपने-आपको खुशनसीब मानते हैं क्योंकि हमें अनेक वर्षों तक उनके साथ समय व्यतीत करने का और करुणा दीदी से कुछ सीखने का अवसर मिला।

हम श्रीमाँ से यही प्रार्थना करते हैं कि हम उनसे प्रेरणा लेकर उनके दिखाए रास्ते पर अग्रसर हों, यही हमारी सच्ची श्रद्धाजंली होगी।



विचार और सूत्र

श्रीमाताजी

- भगवान् के साथ प्रेम, मनुष्यों के प्रति दयालुता का भाव पूर्ण बुद्धिमत्ता की ओर पहला पग है।

- जो व्यक्ति असफलता और अपूर्णता को बुरा बताता है, यह भगवान् को बुरा कह रहा होता है; वह अपनी आत्मा को सीमित कर देता है और अपनी अंतर्दृष्टि को धोखा देता है। किसी को बुरा-भला मत कहो, बल्कि प्रकृति को देखो, अपने भाईयों की सहायता करो, उन्हें सुख पहुँचाओ और अपनी सहानुभूति से उनकी क्षमताओं और साहस को बल दो।

- पुरुष से प्रेम, स्त्री से प्रेम, वस्तुओं से प्रेम, देश से प्रेम, पशु-पक्षियों से प्रेम, मानवजाति से प्रेम इन सबका अर्थ है भगवान् के साथ प्रेम, जो इन सभी सजीव प्रतिरूपों में प्रतिबिंबित होते हैं। यदि तुम समस्त वस्तुओं में आनंद लेना चाहते हो तो प्रेम करो और शक्तिशाली बनो, सबकी सहायता करो और सदा-सर्वदा प्रेम करते रहो।

- यदि कुछ वस्तुएं रूपांतर को पूर्णतया अस्वीकार करती हैं अथवा वे भगवान् के पूर्णतर प्रतिरूप में नहीं बदलना चाहतीं, तो तुम उन्हें कोमल भाव से नष्ट कर सकते हो, पर उनपर चोट तुम्हें निष्ठुरतापूर्वक ही करनी चाहिये। किंतु इससे पहले यह देख लो कि भगवान् ने ही तुम्हें यह भूमिका दी है और इसे पूरा करने के लिये शस्त्र भी।

- मुझे अपने पड़सियों से इसलिये प्रेम नहीं करना चाहिये कि वह मेरे पड़ोस में रहता

है- क्योंकि पास या दूर में क्या रखा है, ना ही इसलिये कि मेरा धर्म कहता है कि वह मेरा भाई है- कारण, इस भातृभाव की जड़ कहाँ है? बल्कि इसलिये कि वह "मैं" ही हूँ।

- सामीप्य या दूरी का प्रभाव केवल शरीर पर पड़ता है, हृदय इन दोनों से परे चला जाता है।

- भातृभाव का संबंध रक्त, देश, धर्म या मानवजाति से है, किंतु जब स्वार्थ अपनी चरम सीमा पर हो, तो इस भातृ को क्या कहा जाये ? भगवान् में निवास करने तथा मन, हृदय और शरीर को वैश्व एकता में ढालने से ही व्यक्ति गहन, निःस्वार्थ और अटल प्रेम कर सकता है।

- एकता और पारस्परिक प्रेम के लिये दिये गये सभी मानवीय तर्क कुछ अधिक मूल्य नहीं रखते, ना इनका कुछ अधिक प्रभाव ही होता है। भगवान् के प्रति सचेतन होकर तथा उनके साथ संयुक्त होकर ही व्यक्ति सच्ची एकता को प्राप्त एवं अनुभव कर सकता है।

- जब मैं "कृष्ण" में निवास करता हूँ तब अहंभाव और स्वार्थ-भाव तिरोहित हो जाते हैं, तब केवल भगवान् ही मेरे अथाह और असीम प्रेम का निर्णय कर सकते हैं।

- कृष्ण में निवास करते हुए शत्रुता भी प्रेम-क्रीड़ा और भाईयों की कुशती बन जाती है।

- जिस आत्मा को उच्चतम आनंद प्राप्त है उसका जीवन ना अशुभ हो सकता है ना एक दुःखप्रद भ्रांति। प्रत्युत समस्त जीवन ही उसके लिये एक दिव्य प्रेमी और खेल के साथी के प्रेम

और हास्य की कलकल ध्वनि बन जाता है। प्रत्येक परिस्थिति में भागवत संपर्क को बनाये रख सकना ही आनंद का गुप्त रहस्य है।

- भगवान् को अशरीर असीम सत्ता मानते हुए भी क्या तुम उनके साथ वैसा प्रेम कर सकते हो जैसा कि पुरुष प्रेमिका के साथ करता है? तब तो समझो कि असीम सत्ता का सर्वोच्च सत्य तुम्हारे आगे प्रकट हो गया है। क्या तुम इस असीम सत्ता को वह गुप्त शरीर रूपी वस्त्र पहना सकते हो जिसे तुम अपनी बांहों में ले सको? क्या तुम उन्हें सभी प्रत्यक्ष एवं स्पर्शक्षम शरीर में देख सकते हो? तभी तुम्हें उसके विशालतम और गहनतम सत्य की प्राप्ति भी होगी।

- भागवत प्रेम एक साथ दो भूमिकाएं निभाता है, एक है वैश्व क्रिया, सागर के तल की भांति,

गहन, स्थिर और अथाह, जो मानों एक समतल स्थान पर, समान दबाव से समूचे जगत् तथा उसके अंदर की प्रत्येक वस्तु पर छापी रहती है, दूसरी है एक निरंतर चलने वाली क्रिया, उसी सागर की थिरकती सतह के समान, शक्तिशाली, तीव्र और आनंद से परिपूर्ण, जो उसकी तरंगों की शक्ति और वेग को बदलती रहती है और उन्हीं वस्तुओं को चुनती है जिन्हें वह अपनी फेन और फुहार से चूमना चाहती है अथवा अपनी सर्वग्राही जलराशि के साथ अपनी बांहों में लेना चाहती है।

अपनी बात को समझाने के लिये श्री अरविन्द उन्हीं प्रतीकों का प्रयोग करते हैं जो सबकी पहुंच के भीतर होती हैं, किंतु भगवान् के साथ मिलन के चमत्कार इन मानवी तरीकों से बहुत आगे निकल जाते हैं।



मेरा मस्तक अपनी चरण-धूलि तल में

रविन्द्रनाथ ठाकुर (गीताजलि)

मेरा मस्तक अपनी चरण-धूलि तल में झुका दे !

मेरा मस्तक अपनी चरण-धूलि तल में झुका दे !
प्रभु ! मेरे समस्त अहंकार को आंखों के पानी में डुबो दे !
अपने झूठे महत्व की रक्षा करते हुए मैं केवल अपनी लघुता दिखाता हूँ ।
अपने ही को घेर मैं घूमता-घूमता प्रतिपल मरता हूँ ।
प्रभु ! मेरे समस्त अहंकार को आंखों के पानी में डुबो दे !
मात्र अपने निजी कार्यों से ही मैं अपने को प्रचारित ना करूँ ।
तू अपनी इच्छा मेरे जीवन के माध्यम से पूरी कर !
मैं तुझसे चरम शांति की भीख मांगता हूँ ।
प्राणों में तेरी परम कान्ति हो !
मुझे ओट देता मेरे हृदय-कमल में तू खड़ा रह !
प्रभु ! मेरा समस्त अहंकार आंखों के पानी में डुबा दे !

मैं अनेक वासनाओं को प्राणपण से

मैं अनेक वासनाओं को प्राणपण से चाहता हूँ ,
तूने मुझे उनसे वंचित रख, बचा लिया।
तेरी यह निष्ठुर दया मेरे जीवन के कण-कण में व्याप्त है ।
तूने आकाश, प्रकाश, देह, मन, प्राण बिना मागे दिए हैं ।
प्रतिदिन तू मुझे इस महादान के योग्य बना रहा है
अति इच्छा के संकट से उबार कर ।
मैं कभी राह भूला-सा, कभी तेरी राह पकड़े-सा
तेरी ओर लक्षित चलता हूँ ।
निष्ठुर ! तू मेरी आंखों की ओट हो जाता है ।
यह तेरी दया है , इस रहस्य को मैं जान गया ।
तू मुझे अपनाने के लिए तुकराता है ।
मेरा जीवन परिपूर्ण करके तू अपने योग्य बना रहा है
अधूरी इच्छाओं के संकट से उबार कर



संकल्प

सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फ़कीर'

1924 में मैं एक प्रसिद्ध लाला दीवानचन्द की नौकरी में था और टाइप का काम करता था। उस समय मेरी आयु उन्नीस वर्ष की होगी। जामा मस्जिद के पीछे एक बड़े हॉल में उनका विशाल दफ़्तर था- जिसमें पचास-साठ कार्यकर्ता बैठते थे। मेरी मेज दरवाजे के अन्दर घुसते ही दाहिने ओर पहली थी जिस पर बैठकर मैं टाइप करता था। तो स्वाभाविक था कि जो भी अन्दर आता था पहले मुझसे बात करता था या जो कुछ पूछना होता था तो पूछता था।

एक दिन एक सन्यासी, जिस्म दुबला-पतला, रंग सावंला, कद छः फुट से ऊंचा, हाथ में सात फुट ऊँचा बाँस (डंडा) लिये हुए मेरे सामने आ खड़े हुए। मैंने नमस्ते करते हुए कहा- "आज्ञा कीजिये आपको किनसे मिलना है?" वे कहने लगे- "लालाजी से मिलना है"। मैंने पूछा- "क्या काम?" वे झिझके और कहने लगे- "उनसे ही कहूँगा।"

मैंने कहा "आप बैठिये और मुझे बतलाइये कि मैं लालाजी से क्या कहूँ कि आप किस काम के लिये आये हैं।" वे कहने लगे- "मैं झज्जर गांव में आर्य बच्चों की शिक्षा के लिए गुरुकुल बना रहा हूँ और लालाजी से उसके लिये धन की प्रार्थना करनी है।"

मैं उनको मैनेजर साहब के पास ले गया और कुर्सी दी कि "बैठ जाइये। आप इनसे बात कर लीजिए ये आपका निवेदन लालाजी तक पहुँचादेंगे और यदि लालाजी की इच्छा भी

आपसे मिलने की हुई तो आपको उनके पास ले जायेंगे।"

स्वामीजी ने कहा- "बहुत अच्छा। आप अपना काम निबटा लीजिये।"

मैनेजर साहब अपने काम में लग गये और एक घंटा बाद जब ऊपर नज़र उठाई तो देखा कि स्वामीजी सिर पर खड़े हैं। मैनेजर साहब ने झुंझला कर कहा- "स्वामीजी आप चैन से बैठ क्यों नहीं जाते? जब मैंने आपसे कहा है कि मैं आपका संदेश लालाजी तक ले जाऊँगा।" स्वामी ने कहा- कोई बात नहीं। आप चिंता ना कीजिए आप अपना काम कर लीजिए।"

दफ़्तर के दूसरे लोगों की नज़र भी स्वामीजी पर थी और वे भी अपनी-अपनी जगहों से बार-बार स्वामीजी से कह रहे थे कि स्वामीजी आप अब बैठ जाइये। परन्तु स्वामीजी बैठने की बजाय दफ़्तर के एक कोने में जाकर खड़े हो गये।

मुझे यह सब देखकर अच्छा नहीं लग रहा था। मेरे दिल में सन्यासियों के लिए बड़े आदर की भावना थी। तो मैं उठकर स्वामीजी के पास गया। उनसे कहा कि, यहाँ का तो कोई भरोसा नहीं कि लालाजी से मिलने में कितने घण्टे लग जायें। इसलिए आप आराम से बैठ क्यों नहीं जाते?

तब उन्होंने मेरी शुभ भावनाओं को पहचानकर मुझे बताया कि मैंने संकल्प किया हुआ है और प्रण लिया हुआ है कि जब तक गुरुकुल बन नहीं जाता तब तक मैं दिन में कभी बैठूँगा नहीं। इस निश्चय ने मेरे अंदर एक प्रकार की आग भर दी

और तब मैंने उनसे खाने-पीने और सोने आदि के बारे में भी विस्तार से पूछा तो उन्होंने बताया कि मैं बहुत प्रातः रात के बचे भोजन का कलेवा करके निकलता हूँ और पैदल ही चलता हूँ। और रात के समय जहां कहीं खाने को मिल जाये तो खाकर किसी आर्य समाज या किसी दूसरे मंदिर या धर्मशाला में विश्राम कर लेता हूँ और प्रातः उठकर फिर चल पड़ता हूँ।

मेरे ऊपर उनके इस सारे आचरण व व्यक्तित्व का बहुत गहरा असर हुआ और मैंने सोचा कि हिम्मत करके लालाजी के पास जाऊँ और उनको बतलाऊँ कि कैसे एक सन्यासी चार घंटे से खड़ा है किसी उद्देश्य को लेकर आपसे मिलने के लिए। लेकिन मेरी, एक मामूली टाइपिस्ट-क्लर्क की कैसे हिम्मत हो सकती थी लालाजी के पास जाने की! ' जबकि मैनेजर और दफ्तर के बड़े-बड़े अफसर घबराते थे और थर-थर कांपते थे।

प्रभु इच्छा, मैं डरता और कांपता हुआ ऊपर चला ही गया। ऊपर लालाजी के दफ्तर का कमरा उतना ही बड़ा और लम्बा-चौड़ा था जिसमें वे अकेले बैठते थे कि जितने बड़े कमरे में नीचे हम पचास-साठ लोग बैठते थे।

लालाजी ने जब मेरे पांव की आवाज सुनी तो दूर से आंख उठाकर देखा, हैरानगी से बोले- "क्या बात है? ऊपर कैसे आये?" हुजूर-हुजूर कहता मैं नजदीक पहुँचा और काँपते-काँपते उनसे स्वामीजी के चार घंटे से खड़े होने की बात बताई। मेरी बात उन्होंने सुन ली इसका मूल कारण यह था कि लालाजी आर्यसमाज के बड़े नेता थे- स्तंभ थे और मैं भी आर्यसमाज का स्वयंसेवक था- और आर्यकुमार सभा का प्रमुख सदस्य था। उनके मन में मेरे लिए कुछ जगह

थी। उनके हृदय में मेरे लिए कोमल स्थान था। सो उन्होंने आज्ञा दे दी कि थोड़ी देर के बाद स्वामीजी को ले आना।

जब मैं स्वामीजी को ऊपर ले गया तो मेरे अन्दर कुछ हिम्मत आ गई। तब मैंने स्वामीजी के निश्चय की सारी बात बतलाई। ऐसा प्रतीत होता है कि लालाजी के ऊपर भी ऐसे उदात्त संकल्प का गहरा असर पड़ा और उन्होंने एक हजार रूपया नगद स्वामीजी के इस महान् कार्य के लिए दान दिया। स्वामीजी लेकर प्रसन्न ही नहीं बल्कि बहुत हैरान भी हो गये।

लालाजी बड़े परोपकारी वृत्ति के थे। उनके पास दिन-रात लोग भिन्न-भिन्न संस्थाओं के लिए दान माँगने के लिए आते ही रहते थे और वे सबको पाँच या दस रूपये तो दे ही दिया करते थे। किसी को निराश नहीं करते थे। कभी-कधार ही बरसों में किसी को सौ रूपये दे दिये होंगे किन्तु इन स्वामीजी के निश्चय के कारण इनको हजार रूपये मिल गये जिसकी कभी आकांक्षा भी ना हो सकती थी। उस जमाने में ज़मीन तो प्रायः ऐसे कामों के लिए मुफ्त ही मिल जाती थी। और यह राशि गुरुकुल शुरू करने के लिए बहुत काफ़ी थी। निश्चय ही गुरुकुल बनकर चलना शुरू हो गया होगा- और स्वामीजी का निश्चय सफल हो गया होगा। यह बात पचास साल से अधिक की हो गई है और यह लिखते समय मेरे पास अचानक झंझर के पास के एक सज्जन आ बैठे। वे यह सुनकर हैरान हो गये और उन्होंने अभी बतलाया है कि यह गुरुकुल इस समय बहुत प्रशंसनीय ढंग से चल रहा है।

एक हजार विद्यार्थियों को वैदिक प्रणाली के अनुसार शिक्षा दे रहा है। इसके साथ और बहुत-

सी संस्थाएं बन गई हैं। बहुत बड़ी खेती है और हजार से अधिक गौएँ गौशाला में हैं।

एक सन्यासी के संकल्पमात्र ने एक गुरुकुल संस्था की स्थापना करवा दी। माताजी व श्रीअरविन्द का कितना बड़ा संकल्प था कि वे संसार का रूपांतर कर देंगे। और उसी संकल्प को लेकर वे एक स्थान में बैठ गये। आश्रम

बनाया और माताजी पचास साल बैठकर उसका संचालन करती रहीं और एक दिन के लिए भी दूसरे किसी स्थान पर नहीं गईं। श्रीअरविन्द पच्चीस वर्ष एक ही कमरे में बंद रहे और इतने वृहद् साहित्य रचना की जो आनेवाले हजारों वर्षों तक मनुष्यजाति को दिव्य-मानव में रूपांतर करने का मार्ग दिखाता रहेगा।



संदेश

हम पृथ्वी के इतिहास के निर्णायक समय में हैं। यह अतिमानव के आने के लिये तैयारी कर रहा है और इसके कारण जीवन का पुराना तरीका अपना मूल्य खो रहा है। व्यक्ति को निडरता से अपने-आपको भविष्य की ओर फेंक देना चाहिये, चाहे इसकी नयी माँगे क्यों ना हों। जो तुच्छताएँ एक समय में बरदाश्त की जाती थीं अब नहीं की जातीं। व्यक्ति को अपने-आपको विस्तृत करना चाहिये ताकि जो कुछ जन्म लेनेवाला है वह उसे पा सके।

- श्रीमाँ

श्री अरविन्द-दिव्य देहांश की स्थापना

रूपा गुप्ता

4 अप्रैल, 2017, मंगलवार को पाली के समीप डेहरी आन सोन स्थित श्री अरविन्द सोसाइटी केंद्र में महर्षि श्री अरविन्द के दिव्य देहांश का प्रतिस्थापन दिल्ली आश्रम की सुश्री तारा जौहर द्वारा विशेष रूप से निर्मित संगमरमर के चबूतरे पर किया गया। कार्यक्रम का शुभारंभ रेलिक्स के पुष्प सज्जा व मातृ संगीत के साथ विशेष ध्यान-पूजा से हुआ। दिव्य देहांश प्रतिस्थापन के दौरान वातावरण बहुत ही दिव्य तथा भागवत उपस्थिति से परिपूर्ण दिख रहा था

दिव्य देहांश समारोह का शुभारंभ- इससे पहले रविवार को श्री महर्षि अरविन्द के पवित्र देहांश का पॉण्डिचेरी से यहां आगमन पर भव्य स्वागत किया गया। अंबेडकर चौक से बेंडबाजे के साथ शोभा यात्रा निकाली गई। पाली रोड स्थित श्री अरविन्द सोसाइटी में शोभा यात्रा का समापन हुआ। जैसे ही सोसाइटी की चेयरमैन सरोज चौबे रेलिक्स लेकर यहां पहुंची, सदस्यों ने श्रद्धा सुमन अर्पित किये तथा सरस्वती विद्या मंदिर के बच्चों ने बेंड के साथ स्वागत किया। रेलिक्स को गाजे बाजे के साथ सोसाइटी पहुंचाया गया। सब लोग शोभा यात्रा के आगे श्रीमांका ध्वज लेकर चल रहे थे। डॉ. उमा वर्मा, सरोज चौबे, विनोद मरोदिया, कृष्णा प्रसाद, दिनेश प्रसाद, अरविन्द कुमार, जय खन्ना, राजेश खन्ना, राजेश तुलस्यान समेत भारी संख्या में श्रद्धालु पवित्र देहांश को अंबेडकर चौक से सोसाइटी पहुंचे। इस अवसर पर सोसाइटी में तीन दिवसीय कार्यक्रम हुआ।

सोमवार को समारोह का शुभारंभ ध्यान के साथ हुआ। मांमन्दिर महसुआ (मध्यप्रदेश) के साधक डॉ० के. एन. वर्मा ने मातृध्वजारोहण किया। जागरण, ध्यान, भजन के अलावा विभिन्न विषयों पर परिचर्चा व व्याख्यान, 'मानव विकासक्रम में बढ़ती उपलब्धि' पर डॉ० डी. पी. खेतान ने मानव विकास क्रम में बढ़ती हुई उपलब्धियों को प्रोजेक्टर के माध्यम से बताया। उन्होंने कहा कि मानव की बुद्धि व मस्तिष्क काफी तेजी से विकास करते हुये नये सोपान की ओर बढ़ रहे हैं। डॉ० एस. पी. राय ने 'सारा जीवन योग है' विषय पर अपने व्याख्यान में कहा कि हम अपने दैनिक जीवन में जो कुछ भी करते हैं वह योग का ही अंग है। श्री नारायण लाल दास ने श्री अरविन्द की सर्वांगीण साधना पर व्याख्यान देते हुये कहा कि श्री अरविन्द योग साधना में शरीर, प्राण व मन तीनों का समावेश है। अन्य योग साधनाओं में यह नहीं पाया जाता। श्री त्रियुगी नारायण लाल दास ने 'मानव जीवन का सच्चा लक्ष्य' विषय पर अपने प्रवचन में कहा कि मानव जीवन का उद्देश्य भागवत् कर्म को पूरा करना है और इसी के लिये मनुष्य इस धरती पर जन्म लेता है। ध्यान, भजन व 'नये भारत की खोज' विषय पर नाटक का मंचन हुआ। इस नाटक में श्री अरविन्द के राजनैतिक जीवन, भारत की भावी नियति व विश्व में उसके दिव्य निर्दिष्ट कार्य की झांकी कलाकारों ने प्रस्तुत की। इन कार्यक्रमों में देश के विभिन्न राज्यों से भारी संख्या में श्री

अरविन्द दर्शन के ज्ञाता व श्रद्धालुओं ने भाग लिया। संजय, गोपाल, स्नेहा, सिमरन, शिवानी व विनीता के भजनों ने सभी को भक्तिरस में डुबो दिया। आमोद कुमार, डॉ० विजय सिंह, डॉ० उमा वर्मा, उमा पाल, विनोद मरोदिया, अजय खन्ना, दिनेश प्रसाद समेत भारी संख्या में साधक मौजूद थे।

सोसाइटी में सुबह से ही महर्षि श्री अरविन्द के रेलिक्स की स्थापना को लेकर विभिन्न प्रांतों समेत स्थानीय साधकों में विशेष उत्साह था। काफी संख्या में साधक उषा ध्यान से ही सोसाइटी परिसर में जुटने लगे थे। सभी के हृदय

में उस पल के लिए तीव्र अभीप्सा दिखी। जब पवित्र देहाश का प्रतिस्थापन हुआ, तो महर्षि श्री अरविन्द के जयकारे से ध्यान कक्ष गुंजायमान हो उठा।

संजय श्रीवास्तव, गोपाल अंबेदकर, अनुभा भट्टाचार्या, बिनु गोपाल, चिनु गोपाल के नमो योगेश्वर श्री अरविन्द, श्री अरविन्द भक्ति प्रणाम..., कुसुम कली सा मेरा मानस... जैसे भजनों ने साधकों का मन मोह लिया। प्रतिस्थापन के उपरांत उपस्थित साधकों द्वारा पुष्पांजलि दी गई व प्रसाद वितरण हुआ।



अवतरण

विमला गुप्ता

सावित्री भाग-2

'एक आख्यान और एक प्रतीक' यह उपशीर्षक है, जो श्री अरविन्द ने अपने महाकाव्य 'सावित्री' को दिया है। यह आख्यान सावित्री सत्यवान की कथा के नाम से बहुत प्रसिद्ध है और महाभारत में वर्णित है। महाभारत में इसका वर्णन सात संक्षिप्त सर्गों में आया है जो लगभग सात सौ पंक्तियों में पूरा हो जाता है। श्री अरविन्द के हाथों में आकर यह कथा रूपान्तरित होकर एक वैश्विक महाकाव्य बन जाती है। यह अंग्रेजी साहित्य की सबसे अधिक लम्बी कविता है जो लगभग 24 हजार पंक्तियों, 49 सर्गों में 12 पर्वों (24 thousand lines, 49 cantos and 12 Books) में पूरी हुई है। श्री अरविन्द का यह महाकाव्य मूल महाभारत आख्यान से लगभग 35 गुना अधिक लम्बा है। उन्हें ऐसे विशाल चित्रपट (Canvas) की जरूरत क्यों पड़ी? क्या उन्होंने मूलकथा को बदलकर उसमें नये विवरण जोड़ दिए? नहीं। कथा की विषयवस्तु लगभग वही है। श्री अरविन्द के इतने व्यापक कथा-कलेवर को लेने का कारण है कि उन्होंने सरल आख्यान को वैश्विक महत्ता के एक प्रतीक काव्य में रूपान्तरित कर दिया है। अब हम संक्षेप में इस परिवर्तन की समीक्षा करेंगे और ऐसा कहते हुए हम 'चिड़िया की आंख' वाली दृष्टि से पूरे महाकाव्य का अवलोकन करेंगे।

महाभारत की कथा में अश्वपति मध्य प्रदेश का एक गुणवान और सहृदय राजा है। उसे जीवन का हर सुख प्राप्त है किन्तु वह निःसंतान

है। अतः संतान पाने की कामना से वह अट्टारह वर्ष की कठोर तपस्या का व्रत लेता है। अन्त में देवी सावित्री उसके समक्ष प्रकट होती हैं और शीघ्र ही उसे एक कन्यारत्न पाने का वरदान देती हैं। महाभारत में यह प्रसंग मात्र दस पंक्तियों में प्रस्तुत कर दिया गया है।

श्री अरविन्द के सावित्री महाकाव्य में यह प्रसंग 22 सर्गों और 10,000 पंक्तियों (22 cantos and 10,000 lines) से अधिक में पूरा हुआ है। आखिर इस विषय प्रसंग को हजार गुना अधिक विस्तार देने का क्या प्रयोजन था? इस प्रश्न का एक सरल उत्तर यह है कि श्री अरविन्द का राजा अश्वपति महाभारत कथा का एक सन्तानविहीन दुखी राजा मात्र नहीं है जो सन्तान पाने भर के लिए तपस्या करता है। श्री अरविन्द का राजा अश्वपति एक दृष्टा है, प्रबुद्ध मानवता का एक नेता एवं प्रतिनिधि है।

वह भी निःसन्देह एक खोज में है पर वह खोज सन्तान-प्राप्ति की व्यक्तिगत कामना के लिये ही नहीं है वरन् उसकी खोज उस सृजनात्मक 'सिद्धान्त' के लिये है जो समस्त मानवी कुण्ठाओं, असन्तोषों तथा दुरितों का अन्त करने में सक्षम हो। यह वह तथ्य है जो अभी तक चिन्तकों, सुधारकों, क्रान्तिदर्शियों, यहाँ तक कि अवतारों द्वारा भी अनदेखा और अनछुआ बना रहा है। अश्वपति ने वह मानवी ज्ञान और प्रज्ञा हासिल कर ली है जो भू-मण्डल के पूर्वी और पश्चिमी द्वीपों को प्रदान की जा चुकी है। वह इस दुःखद सत्य का जानकार है

कि कोई भी ना तो विज्ञान और तकनीक, ना धर्म और कला अभी तक इस सामर्थ्य व योग्यता को हासिल नहीं कर पाये हैं कि वे मनुष्य को मृत्यु, अज्ञान और कष्टों के पंजों से निकाल सकें।

युग-युग से मनुष्य ने सदा ही भगवान् की अभीप्सा की है, प्रकाश, मुक्ति एवं अमरता की अभिलाषा की है पर क्या मनुष्य की यह आकांक्षा इस धरती-जीवन में अभी तक पूरी हुई है ? इस सच्चाई को हमें सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि श्री अरविन्द के अश्वपति की खोज स्वयं योगी रूप में उनकी अपनी खोज भी है। वास्तव में राजा के योग को अर्पित 22 सर्ग श्री अरविन्द की अपनी तपस्या का भी दर्पण हैं एवं उनकी खोज की साक्षात् अभिव्यक्ति हैं। उन्हीं की तरह अश्वपति रूपान्तर के उस रहस्य को मानवता के लिये जीत लेना चाहता है जो मानवी चेतना का मूल स्वरूप है ताकि पृथ्वी का जीवन पूर्ण रूप से खिल सके, प्रस्फुटित हो सके।

इस प्रयोजन को पाने के लिये श्री अरविन्द का राजा अश्वपति कठोर तपस्या अंगीकार करता है जो महाकाव्य में, 'अश्वपति का योग' शीर्षक से वर्णित है। राजा के योग की इस प्रक्रिया को तीन क्रमावस्थाओं में रखा जा सकता है। पहली अवस्था है जिसके दौरान राजा अपने आत्मा को देह, प्राण और मन के बंधन से छुड़ाकर मुक्त कर लेता है, फलस्वरूप आध्यात्मिक परिपूर्णता उपलब्ध कर लेता है। दूसरी अवस्था की विषय-सामग्री पर्व 2 में आई है जिसका शीर्षक है- 'विश्वों के यात्री का पर्व' (The Book of the Traveler of the Worlds)।

यहां अश्वपति चेतना के उन क्षेत्रों एवं स्तरों की गवेषणा करता है जो भौतिक अचेतना से मन

के चेतना-स्तरों तक और फिर मनोलोक के परे के प्रदेशों तक उद्धाटित हुए हैं। वह यह तपस् यात्रा मनुष्य जाति के एक विशिष्ट प्रतिनिधि के रूप में अंगीकार करने और अतिमानसिक क्षेत्रों को खोज लेने की सम्भावना को सच करने एवं उन पर विजय-प्राप्ति के लिए करता है। अब अश्वपति को यह प्रत्यक्ष बोध हो जाता है कि उस प्रभु ने ही मानवी प्रकृति को धारण किया हुआ है और मनुष्य जीवन का सच्चा प्रयोजन अपनी दिव्य प्रकृति को पुनः पा लेना है। यह दुर्लभ कार्य अकेले मानवीय क्षमता से नहीं किया जा सकता। एक उच्चतम शक्ति को नीचे पृथ्वी पर आकर उसकी सहायता करनी होगी। वह यह भी देखता है कि मनुष्य की समस्याओं का समाधान ना तो जीवन से आत्मा में पलायन करने में निहित है और ना आत्मा को अस्वीकार कर देने में पाया जा सकता है। समाधान पृथ्वी पर एक नई सृष्टि के सृजन में निहित है जो लघु मानवी-चेतना को विशाल अतिमानसिक चेतना में रूपान्तरित कर सके।

अश्वपति इसी महान कार्य को पूर्ण करने की आशा संजोता है। अब अश्वपति अपनी अन्तर्यात्रा के अन्तिम मुहाने पर पहुंचता है और अन्ततः 'दिव्य माता' के अन्तर्दशन का सौभाग्य पाता है। माता उससे आग्रह करती है कि वह अपनी ही मुक्ति और सौभाग्य पर, जो उसने तपस्या के द्वारा प्राप्त किये हैं, सन्तोष करे और मनुष्य के लिये उसकी मांग ना करे क्योंकि मानव-जीवन अभी दिव्य-जीवन के महान् वरदान को धारण करने योग्य नहीं बन पाया है। वह माता कहती है:- मनुष्य बहुत दुर्बल है वहन करने में 'शाश्वत' का बोझ। समय से पूर्व प्रकट हुआ सत्य, कर देगा पृथ्वी को खंड-खंड।

(पर्व 3, सर्ग 4, पृष्ठ 335)

लेकिन अश्वपति केवल अपनी निजी मुक्ति और आनन्द के लिए उत्सुक नहीं है। वह जानता है कि सदियों से मनुष्य अपनी आकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए अथक संघर्ष कर रहा है। अतः वह मनुष्यमात्र के प्रतिनिधि के रूप में 'दिव्य माता' से सतत आग्रह करता है कि इस नश्वर जीवन में भागवत् कृपा का अवतरण हो, आविर्भाव हो,

वे उसे यही आश्वासन दें। अश्वपति की आतुर प्रार्थना दिव्य माता से उनकी कृपा के अवतरण का वरदान प्राप्त कर लेती है। वे उसे वरदान देती हैं कि माता की कृपा मूर्तिमान होकर पृथ्वी पर उतरेगी और पृथ्वी के दुर्भाग्य को परिवर्तित कर देगी। निम्न पंक्तियों में "माता" के इन आश्वासन-युक्त शब्दों को सुनिये:-

ओ तेजस्वी अग्रदूत! मैंने सुन ली है तेरी कातर पुकार
कोई शक्ति उतरेगी धरा पर और तोड़ेगी इसके लौह-नियमों को,
कर देगी धरती के दुर्भाग्य को परिवर्तित अपने निज आत्म बल से।
समूचे विश्व को धारण कर सकने योग्य एक 'असीम मन'
गहन प्रशान्ति से पूर्ण एक मधुर और उग्र हृदय,
देवतों के अनुराग से भरा आयेगा यहाँ,
उसमें सन्निहित होंगी समस्त शक्तियाँ और महानताएं,
सौन्दर्य मूर्तिमान होकर विचरेगा इस धरती पर,
मेघ सम केशों में आनन्द करेगा विश्राम,
और 'अमर प्रेम' उसकी देह में नीड़ वृक्ष की तरह,
अपने शोभायमान पंख फड़-फड़ायेगा,
विषाद-रहित रागों का संगीत उसके आकर्षण को बुनेगा,
पूर्णता की वीणा उसकी वाणी में लयताल करेगी,
स्वर्ग के झरने उसकी हँसी में कल-कल करेंगे,
उसके ओंठ होंगे प्रभु के माधुर्य का मधुकोष,
उसके अंग-अंग होंगे स्वर्गीय आनन्द के स्वर्णिम पात्र,
उसके उरोज सुशोभित होंगे जैसे स्वर्ण के खुशनुमा फूल,
निःशब्द वह धारण करेगी अपने अन्दर महान प्रज्ञा को।
ऐसी महाशक्ति होगी उसके पास जैसी विजेता की तलवार
उसके नेत्रों से निहारेगा, 'शाश्वत का परम सुख'
"काल" के भीषण मुहूर्त में एक बीज बो दिया जायेगा
स्वर्ग की एक शाखा, धरती की मिट्टी में कर दी जायेगी पुनः रोपित
प्रकृति अपना मरणशील पग उठा लेगी ऊपर
और एक "अमर संकल्प के द्वारा भाग्य बदल दिया जायेगा।"

(सर्पर्व 3, सर्ग 4, पृष्ठ 346)



'सावित्री' के विषय में माताजी

विमला गुप्ता

यदि तुम 'सावित्री' को ना भी समझ पा रहे हो तो भी उसे अवश्य पढ़ो। तुम्हें अनुभव होगा कि प्रत्येक बार जब तुम उसे पढ़ते हो तो एक नयी अनुभूति, एक नया बोध तुम्हारे अन्दर उद्घाटित हो जाता है, प्रत्येक बार तुम्हें उसमें एक नयी ज्योति की झलक मिलेगी। वे बातें जो पहले तुम नहीं समझ पा रहे थे, सहसा तुम्हारे समक्ष स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हो उठेंगी। 'सावित्री' के अध्ययन से, उसके शब्दों एवं पंक्तियों में से एक अनपेक्षित अन्तर्दर्शन उभर जाता है और तुम्हें प्रतीत होगा कि कुछ नया उसमें जुड़ गया है। मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि प्रत्येक छन्द और प्रत्येक वृत्त, जो तुम पहले पढ़ चुके हो, अब एक नये प्रकाश में तुम्हारे अन्दर व्यक्त हो उठा है। यही बार-बार घटित होता है। हर बार तुम्हारी अनुभूति एवं तुम्हारी समझ अधिक संवर्धित एवं सम्पन्न हो जाती है और यही प्रत्येक कदम पर इसके अध्ययन का प्रतिफल है, उद्घाटन है।

लेकिन, तुम्हें 'सावित्री' को किसी अन्य पुस्तक या समाचार-पत्र की तरह नहीं पढ़ना चाहिये। अपने मस्तिष्क को अन्य सभी प्रभावों से रहित करके इसे पढ़ना चाहिये। कोई भी दूसरा विचार, मानसिक ऊहापोह या उद्वेलन वहाँ नहीं रहना चाहिये और फिर पहले स्वयं को एकाग्र एवं शान्त रखकर अन्तर मन को खोल देना चाहिये, तब तुम्हारे उस कोरे पन्ने पर 'सावित्री' के शब्द, छन्द एवं उनके प्रकम्पन अनुप्राणित होने लगेंगे, अंकित होने लगेंगे, अपनी मुहर तुम्हारे मस्तिष्क

पर लगा देंगे और तुम्हारे प्रयास के बिना ही स्वयं की व्याख्या एवं अर्थ उद्घाटित करने लगेंगे।

'सावित्री' अकेले ही तुम्हें उच्चतम स्तरों तक पहुँचाने में समर्थ है। यदि कोई सही एवं सच्चे मनोभाव और ढंग से 'सावित्री' पर ध्यान एकाग्र करना जान लेता है तो उसे वह समग्र सहायता प्राप्त होता रहेगी, जिसकी उसे जरूरत है। उस व्यक्ति के लिये जो इस व्यक्ति के लिये जो इस योग-मार्ग का अनुसरण करना चाहता है, यह एक ठोस सहायता है, जैसे मानो स्वयं भगवान् उसे अपने हाथों में ले जा रहे हों और उसके नियत लक्ष्य की ओर अग्रसर कर रहे हों; और तब उसके मन में उठा प्रत्येक प्रश्न, चाहे वह कितना भी व्यक्तिगत क्यों ना हो, का उत्तर उसे 'सावित्री' के पाठ में निहित मिलेगा, उसकी प्रत्येक कठिनाई का समाधान उसमें प्राप्त होगा। वास्तव में इस महान् कृति में वह समस्त मूल सारतत्त्व विस्तार से निहित है, जो योग प्रक्रिया के लिये आवश्यक है।

"श्री अरविन्द ने अपनी इस एक ही पुस्तक में सम्पूर्ण जगत् ठसाठस (Crammed) भर दिया है। यह एक अद्भुत कार्य है, अति गरिमापूर्ण, अतुलनीय, अनुपम, अद्वितीय रचना है।"

तुम जानते हो, "सावित्री" लिखने से पूर्व श्री अरविन्द ने मुझसे क्या कहा था?

"I am impelled to be launched on a new adventure. I was hesitating in the beginning, but now I am decided. Still I do

not know how far I shall succeed. I pray for help"

और तुम जानते हो यह उनकी क्या स्वीकृति थी? यह थी प्रारम्भ करने से पूर्व, मैं तुम्हें पहले ही सावधान कर देना चाहती हूँ, यह उनके बोलने का एक ढंग था, जो सदा ही शालीनता एवं दिव्य नम्रता से परिपूर्ण रहता था। उन्होंने कभी स्वयं को आग्रह एवं बलपूर्वक पेश नहीं करना जाना और जिस दिन वस्तुतः उन्होंने इस महाकाव्य को लिखना शुरू किया, उन्होंने मुझसे कहा :-

"I have launched myself in a rudderless boat upon the vastness of the Infinite."

और जब एक बार उन्होंने इसकी रचना प्रारम्भ कर दी तो बिना रुकावट के पृष्ठ के बाद लिखते चले गये, मानो वह ऐसी कोई वस्तु हो जो पहले से ही वहाँ पूरी तरह तैयार हो और जिसे उन्होंने स्याही (Ink) से यहाँ नीचे प्रतिलिखित कर दिया हो।

सच्चाई तो यह है कि 'सावित्री' का पूर्ण आकार-प्रकार, उसकी रूपाकृति ऊपर के उच्चतम स्वरों से यहाँ नीचे अवतीर्ण हुई और श्री अरविन्द ने अपनी महान् प्रतिभा से उसे पंक्तिबद्ध एवं व्यवस्थित कर दिया, एक बहुत ही श्रेष्ठ गरिमापूर्ण शैली से यहाँ सजा दिया। कभी-कभी पूरी की पूरी पंक्तियाँ उनके अन्दर उजागर हो उठती थीं और उन्हें अविकल, ज्यों की त्यों पन्नों पर लिख दिया करते थे। उन्होंने अथक श्रम किया, अनवरत किया, जिससे कि प्रेरणा उच्चतम स्तरों से नीचे आ सके और सचमुच ही यह अपने में एक अनुपम सृजन है, अद्वितीय कृति है। इसे एकमुश्त (Single) एवं स्पष्ट रूप में मानो पन्नों पर रख

दिया गया है। इसके पद समन्वयात्मक, सही एवं सत्य हैं।

मैंने कितनी ही पुस्तकें पढ़ी हैं, लेकिन अभी तक मैं किसी एकमेव ऐसी कृति के परिचय में नहीं आयी जो 'सावित्री' की समता कर सके। मैंने ग्रीक एवं लेटिन में लिखी महान् पुस्तकों को पढ़ा है, इंग्लिश एवं फ्रेंच साहित्य का भी अध्ययन किया है, पूर्व एवं पश्चिम के श्रेष्ठ महाकाव्यों को भी पढ़ा है, लेकिन मैं फिर कहती हूँ कि ऐसी कोई कृति नहीं, जिसकी 'सावित्री' से तुलना की जा सके। ये सभी महाकाव्य मुझे उसके समक्ष ऊष्मा और गरिमा-रहित, सपाट एवं सच्चे अन्तर्दर्शन से रिक्त होते हैं। निश्चय ही इनमें कुछ अपवाद स्वरूप हैं, लेकिन वे भी अपने किन्हीं लघु अंशों में ही हैं। 'सावित्री' में कितनी उच्चता, भव्यता, विस्तार एवं वास्तविकता है! वस्तुतः यह श्री अरविन्द रचित एक अमर एवं शाश्वत रचना है। सच कहूँ तो इसके समान सम्पूर्ण विश्व में कोई दूसरी कृति नहीं। यदि व्यक्ति इसके अन्तर्दर्शन (Vision) को भी एक ओर रख दे अर्थात् इसमें जो वास्तविक एवं अनिवार्य सारतत्त्व है, जो समस्त प्रेरणा का हृदय है, और वह केवल 'सावित्री' की पंक्तियों पर ही अपना विचार एकाग्र करें तो वे उसे अद्वितीय प्रतीत होंगी, वे उसे उत्कृष्ट, चिर सम्मत एवं सर्व प्रतिष्ठित स्तर की पंक्तियाँ लगेगी। श्री अरविन्द ने जो कृति सृजी है, मनुष्य उसकी कल्पना नहीं कर सकता। इसमें काव्य की प्रत्येक विधा, सम्पूर्ण दर्शन की प्रणाली एवं तत्व और विविधता विद्यमान है।

और तब हम कह सकते हैं कि 'सावित्री' एक दिव्य उद्घाटन है, एक ध्यान है, यह अनन्त की खोज है, अन्वेषण है। यदि इसे अमरत्व की

अभीप्सा एवं अन्तःप्रेरणा से पढ़ा जाय तो केवल इसका पाठ ही अमरत्व की ओर पथ-प्रदर्शक का कर्तव्य पूरा करेगा। 'सावित्री' को पढ़ना वास्तव में योग का अभ्यास करना है, आध्यात्मिक समता एवं एकाग्रता की उपलब्धि करना है। अभीप्सुक को इसमें वह सब मिलेगा, जो भगवान् को साक्षात् करने के लिये आवश्यक है। योग की प्रत्येक विधा का इसमें विस्तार से उल्लेख कर दिया गया है। साथ ही, अन्य दूसरी योग-प्रक्रियाओं के रहस्यों का भी इसमें समावेश है। निश्चय ही यदि व्यक्ति सच्चाई से इसकी प्रत्येक पंक्ति, जिस सत्य का इसमें उद्घाटन हुआ है, का अनुसरण करता है तो वह अन्ततः 'अति मानसिक योग' के रूपान्तर तक पहुँच जायेगा। यह सचमुच ही अमोघ एवं अचूक मार्गदर्शक है, जो कभी भी तुम्हारा साथ नहीं छोड़ेगा। उसका सहयोग उस व्यक्ति के लिये सदैव उपलब्ध है, जो मार्ग पर अग्रसर होने के लिये दृढ़संकल्प है। सावित्री का प्रत्येक शब्द, वृत्त एवं पंक्ति पर संसिद्ध मन्त्र की भांति है, जो ज्ञान के द्वारा प्राप्त मनुष्य की सभी उपलब्धियों से सर्वोपरि है और मैं फिर कहती हूँ कि शब्द इस ढंग से संजोये गये हैं कि छन्द की लयबद्धता तुम्हें मूल नाद (sound) ओर की ओर ले जाती है।

मेरे चिरंजीव! 'सावित्री' में सब कुछ है, सब कुछ रहस्यवाद, गुह्यवाद, दर्शन, विकास-क्रम का इतिहास, सृष्टि एवं प्रकृति का इतिहास, कैसे सृष्टि की रचना हुई, क्यों और किस प्रयोजन के लिये, किस लक्ष्य के लिये हुई इत्यादि। इसमें सब कुछ दिया हुआ है। तुम इसमें सभी प्रश्नों के उत्तर पा सकते हो। इसमें इन्हीं तथ्यों का स्पष्टीकरण किया गया है, यहाँ तक कि मनुष्य का भविष्य

व आगामी विकास का स्वरूप भी इसमें दर्शाया गया है। इस भावी-स्वरूप के विषय में अभी तक कोई नहीं जानता है। श्री अरविन्द ने उसे बड़ी गहनता, सुन्दरता एवं स्पष्टता से इसमें वर्णित किया है, ताकि वे आध्यात्मिक अन्वेषक, जो विश्व के रहस्यों को जानना और हल करना चाहते हैं, उन रहस्यों को और अधिक सरलता एवं स्पष्टता से निःसन्दिग्ध होकर समझ सकें। लेकिन वे रहस्य इस कृति की पंक्तियों के अन्दर छुपे हुए हैं और जो इनको जानना चाहते हैं, उन्हें इन रहस्यों को खोजने के लिये सत्य-चेतना (Truth-consciousness) को हासिल करना पड़ेगा। समस्त भविष्यवाणियाँ अर्थात् वह सब जो आगे होने जा रहा है, एक विशेष एवं अद्भुत ढंग से इसमें समाहित कर दिया गया है। श्री अरविन्द ने तुम्हें सत्य उपलब्ध करने की, 'सत्य-चेतना' को ढूँढ़ निकालने की कुंजी थमा दी है, ताकि प्रकाश मर्म में पहुँच सके, अवरोधों को भेद सके और रूपान्तर कर सके। उन्होंने वह मार्ग दिखाया है जिस पर चलकर मनुष्य स्वयं को आदिम अज्ञान से मुक्त कर सकता है और सीधे उच्च चेतना के धरातल तक चढ़ सकता है। तुम इस महान् रचना में जीवन की समूची यात्रा का विस्तार से विवरण पाओगे और जैसे-जैसे तुम आगे बढ़ोगे तुम उन अपरिचित एवं अनजाने तथ्यों को खोज सकोगे, जिनसे अभी तक मानव-जीवन अनभिज्ञ है। "यह 'सावित्री' है और इससे भी अधिक है।"

'सावित्री' श्रीअरविन्द की अपनी अनुभूति है और इससे अधिक अद्भुत बात यह है कि यह मेरी अपनी भी अनुभूति है। यह मेरी साधना है, जिसे उन्होंने कार्यान्वित किया। इसमें वर्णित प्रत्येक विषय, प्रत्येक घटना एवं साक्षात्कार, इसके

चित्रण, यहाँ तक कि रंगों का वर्णन भी वही है, जिनका मैंने बोध किया, अन्तर्दर्शन किया। इसके शब्द और मुहावरे भी वही हैं, जैसे मैंने सुने थे और ये सब अनुभव उसके सुनने-पढ़ने के पूर्व ही हो जाते थे। इसके पश्चात मैंने कई बार 'सावित्री' पढ़ी, किन्तु जब श्री अरविन्द इसे लिख रहे थे, प्रत्येक सुबह वे इसे मेरे सामने पढ़ा करते थे, तब मुझे यह सब बड़ा विचित्र प्रतीत होता था, शब्दशः मुझे वही अनुभव, जो मैं प्रातः उनसे सुनती थी, रात्रि में हुआ करते थे। वही सारे वर्णन, शब्द, सम्वाद, रंग, चित्र मैं देखती थी, सुनती थी, जो उनकी कविता में चित्रित रहता था और यह कोई अकस्मात् किसी एक दिन की बात नहीं थी, अपितु नित्य-प्रति का क्रम था। वास्तव में यह हम दोनों के संयुक्त अभियान (Adventure) की एक तस्वीर है, वह अभियान जो अज्ञात लोक अथवा अतिमानस की ओर बढ़ने का और उसमें प्रवेश कर जाने का संयुक्त अभियान था।

ये वे अनुभव हैं, जिन्हें श्री अरविन्द ने जिया। ये वास्तविकताएं हैं, Super cosmic- सत्य के परम सत्या। उन्होंने इनको वैसे ही अनुभव किया, जैसे कोई भौतिक जीवन में सुख-दुःख अनुभव करता है। वे अवचेतना के अँधेरों में घूमे, यहाँ तक मृत्यु के परिवेश व सामीप्य में घूमे, यात्रा की, नरकवास की यातना को सहन किया और कीचड़ से निर्गमन किया, ऊपर उठे, जो सांसारिक क्लेश (World-misery) हैं, वे सब सहे, सार्वभौमिक परिपूर्णता में श्वास लेने के हेतु तथा सर्वोच्च आनन्द में प्रवेश करने हेतु। उन्होंने इन सभी क्षेत्रों को पार किया और इनके दुष्परिणामों से गुजरे, देह स्तर पर भी जो कष्ट झेले और सहन किये उनकी कोई कल्पना नहीं कर सकता। आज

तक भी किसी ने उनकी तरह यह सब नहीं सहा है। उन्होंने कष्टों को इसलिये झेला, ताकि वे उन्हें प्रभु के एकत्व के आनन्द में रूपान्तरित कर दें। यह विश्व के इतिहास में एक अद्वितीय एवं अतुलनीय उदाहरण है। ऐसा पहले कभी घटित नहीं हुआ। वे ही प्रथम यात्री थे, कहें, अज्ञात के पथ को ढूँढ़ निकालने एवं सुगम बना देने वाले प्रथम पुरुष, ताकि हर समस्त मानव उसके सदृश हो सकें और उस सर्वोच्च सत्य-लोक (अतिमानस लोक) की ओर कदम बढ़ा सकें। 'सावित्री' रूपान्तर का पूर्ण योग है, जिसे उन्होंने हमारे लिये सुलभ किया है और यह योग प्रथम बार पृथ्वी-चेतना में प्रविष्ट एवं प्रकट हुआ है। और मैं सोचती हूँ कि मनुष्य अभी तक तैयार नहीं हुआ है कि वह इसके आगमन का स्वागत कर सके, क्योंकि यह प्राकट्य उसके लिये बहुत ऊँचा और बृहद् है। वह इसको ना तो समझ सकता है, ना ग्रहण कर सकता है, क्योंकि मन के द्वारा 'सावित्री' को नहीं समझा जा सकता। उसके लिये आध्यात्मिक समझ एवं अनुभव की जरूरत है, तभी वह इस महान् रचना को आत्मसात करने योग्य बन सकता है। जैसे-जैसे व्यक्ति योग मार्ग पर प्रगति करेगा, वह इसे अधिक उत्तम ढंग से अंगीकार करने योग्य बनता जायेगा। यही नहीं 'सावित्री' भविष्य का काव्य है और भविष्य में उद्घाटित एवं प्रशंसित होगा, जिसके विषय में श्री अरविन्द ने अपनी "भावी कविता" नामक पुस्तक में उल्लेख किया है। यह अत्यन्त सूक्ष्म एवं परिष्कृत रचना है, जो मन, बुद्धि के द्वारा नहीं, वरन् ध्यान की एकाग्रता में प्रकट होगी। और मनुष्यों की ढिठाई देखो कि वे इसकी तुलना वर्जिल (Virgil) और होमर (Homer) की कृतियों से करते हैं, वे अभी

इसे जान और समझ नहीं सके हैं। शायद सुदूर भविष्य में वे इसे समझने योग्य बन सकें। एक नयी पीढ़ी, जो नयी चेतना से युक्त होगी, इसे समझने योग्य होगी। मैं तुम्हें दृढ़तापूर्वक कहती हूँ कि इस नीलाकाश के नीचे ऐसा कुछ भी नहीं है, जो 'सावित्री' के सदृश हो, उसकी तुलना कर सके। यह रहस्यों की रहस्य है, उत्कृष्ट महाकाव्य है, उच्चतम साहित्यिक कृति है, श्रेष्ठतम अन्तर्दर्शन है और एक महान् कार्य है। यदि केवल इसकी पंक्तियों की दृष्टि से ही इसकी परख करें जो उन्होंने लिखी हैं तो वे बेमिसाल हैं और ना ही मानव-भाषा के शब्द 'सावित्री' की समीक्षा करने में समर्थ हैं। यह शब्दातीत रचना है, काव्यों की श्रृंखला से परे की कृति है। इसकी महत्ता एवं मूल्य अपरिमित है। यह अपने विषय में शाश्वत है और आग्रह (Appeal) में अनन्त, अपनी शैली में अनुपम एवं प्रस्तुतिकरण में अत्यन्त सशक्त है। ज्यों-ज्यों तुम इसकी गहराई में प्रवेश करोगे, एक उत्कृष्टता में ऊपर उठा लिये जाओगे। यह एक अत्यन्त बहुमूल्य उपहार है, जो श्री अरविन्द ने मनुष्य को प्रदान किया है, कहुँ जितना श्रेष्ठतम सम्भावित हो सकता था।

यह क्या है, मनुष्य कब जान पायेगा? कब सत्य का जीवन जीने की ओर तत्पर होगा, उत्कण्ठित होगा? वह कब इस महान् संसिद्धि को अपने जीवन में अपनायेगा? यह अभी तक ज्ञात नहीं, आगे देखना है।

मेरे बच्चे, प्रत्येक दिन जब भी तुम 'सावित्री' पढ़ो तो समुचित मनोभाव से पढ़ो। इसके पृष्ठ खोलने से पहले एकाग्रता लाओ और अपने मन-मस्तिष्क को जितना सम्भव हो सके, उतना रिक्त रखने का प्रयास करो, किसी विचार-तरंग को

बाधा मत पहुंचाने दो, इसकी सीधी राह हृदय से होकर गयी है। मैं सच कहती हूँ कि यदि तुम इस अभीप्सा के साथ हृदय को एकाग्र करो तो तुम चैत्य-अग्नि को प्रज्वलित कर सकते हो। बहुत कम समय में, सम्भवतः कुछ भी दिवसों में, पवित्रीकरण की इस प्रक्रिया को साध सकते हो, जो तुम पहले कर सकने में सफल नहीं हो पा रहे थे, वह 'सावित्री' की सहायता से कर सकने में सफल हो सकोगे। तब तुम अनुभव करोगे कि शनैः शनैः कितना बड़ा अन्तर तुम्हें अपने में महसूस होने लगा है, कितना नवीन और प्रेरक। अपनी अपनी चेतना की पृष्ठभूमि से इसे पढ़ोगे तो मानो यह श्री अरविन्द के प्रति तुम्हारी भेंट (Offering) होगी।

तुम्हें प्रतीत होगा, जैसे 'सावित्री' अब परिवर्तित हो गयी है, जैसे वह एक जीवन्त सत्ता, एक मार्गदर्शक बन गयी है, मैं फिर कहती हूँ जो जीवन में इसकी आवश्यकता महसूस करता है, वह 'सावित्री' की सहायता से ऊपर चढ़ने में अवश्य समर्थ होगा और योग की सबसे ऊपरी सीढ़ी तक पहुँचने योग्य बन जायेगा तथा वह रहस्य समझ लेगा, जिसे 'सावित्री' प्रस्तुत करती है और वह भी किसी गुरु की सहायता के बिना। सर्वोत्तम सुविधा यह है कि वह इस योग का अभ्यास कहीं भी रहकर कर सकेगा, उसके लिये 'सावित्री' ही उसका एकमात्र मार्गदर्शन करेगी।

जब भी किसी कदम पर उसे कुछ जानने की आवश्यकता होगी, 'सावित्री' में उसे वह मिल जायेगा। यदि कठिनाई के समय व्यक्ति अनिश्चय में रहता है और वह नहीं जानता कि उसे किधर मुड़ना है, किधर से आगे बढ़ना है और कैसे इस बाधा से उबरना है तथा प्रत्येक क्षण हम मनुष्यों

को अपने अधिकार में करने वाली असमंजस और अनिश्चिताओं की स्थितियों से कैसे मुक्त होना है, जब ये सब असमंजस और अनिश्चितताएं, जो प्रत्येक क्षण हम मनुष्यों को अपने अधिकार में करती रहती हैं, तब उसे 'सावित्री' के द्वारा आवश्यक एवं ठोस सहायता प्राप्त होगी। यदि वह अपने को बहुत शान्त और खुला रखेगा और बहुत गहनता से सही रास्ता पाने की अभीप्सा करेगा तो सदैव ही उसे प्रतीत होगा कि किसी अदृश्य हाथ के सहारे वह आगे ले जाया जा रहा है। यदि उसमें दृढ़-विश्वास है, अपने को देने की सच्ची लगन है, अनिवार्य गाम्भीर्य है तो वह अपने अन्तिम लक्ष्य तक पहुंच जायेगा। निःसन्देह 'सावित्री' मूर्त सत्ता है, जीवन्त जागृत तत्व है और पूर्ण काव्य है। यह चेतना से भरपूर है। वह परमोच्च ज्ञान है और सभी मानवीय दर्शनों एवं धर्मों से ऊपर है। वह आध्यात्मिक राह है, योग है, तपस्या और साधना है। इस एक अकेले आकार (Body) में सब कुछ समाविष्ट है। 'सावित्री' असाधारण शक्ति है। यह हृदयों को उच्च प्रकम्पनों से भर देती है। इसमें चेतना के प्रत्येक स्तर के प्रकम्पन हैं, संवेदन हैं। अपनी विपुलता में यह पूर्ण सत्य है, वह सत्य जिसे श्री अरविन्द यहां पृथ्वी पर उतार कर लाये। मेरे बच्चे! जिस रहस्य का 'सावित्री' प्रतिनिधित्व करती है, व्यक्ति को उसे ढूढ़ने का प्रयास करना चाहिये। श्री अरविन्द ने हमारे लिये जिस भविष्यवाणी का उद्घोष किया है, वह समझने में कठिन है, किन्तु करने योग्य एक परम सार्थक कार्य है।

यदि तुम मायूस हो, निराश हो, तुम अवसाद से घिरे हुए हो, यह जानने में समर्थ नहीं हो पा रहे हो कि तुम्हें क्या करना है, क्या नहीं,

अथवा तुम्हारे साथ सदा वही घटित होता है, जो तुम्हारी इच्छा के विपरीत होता है चाहे तुम उससे बचने की कितनी भी कोशिश करो, यदि किन्हीं विपरीत कारणों से तुम्हारा मिजाज और मन स्थिति नियंत्रण में ना रह पा रहे हो, जीवन नीरस और निरर्थक प्रतीत हो रहा हो और तुम किसी भी तरह प्रसन्न नहीं हो पा रहे हो तो तुम तुरन्त 'सावित्री' उठाओ और कुछ क्षणों की एकाग्रता के बाद इसका कोई भी पृष्ठ खोल लो, तुम्हारी समस्त अवसादपूर्ण मनःस्थिति धुएं के समान विलुप्त हो जायेगी और तुम महसूस करोगे कि तुममें अपनी दुरावस्था से बाहर आने की शक्ति आ गयी है और जो कुछ तुम्हें इतना पीड़ित और निराश कर रहा था, अब वैसा नहीं लग रहा है। इसके विपरीत तुम अपने अन्दर हल्कापन, एक विचित्र खुशी महसूस कर रहे हो, चेतना के पुनरागमन के साथ एक शक्ति और सामर्थ्य तुम प्रत्येक अवरोध को जीत लेने के लिये पा गये हो, मानो तुम्हारे लिये कुछ भी असम्भव नहीं रहा है और तब तुम्हें एक अक्षय आनन्द का अनुभव होगा। ऐसा आनंद जो प्रत्येक बोझिल मनोवस्था को पवित्र एवं निर्मल करता है।

मनोयोग से 'सावित्री' की कुछ पंक्तियां पढ़ो और वे तुम्हारी आन्तरिक सत्ता का 'सावित्री' से संपर्क स्थापित कर देंगी। 'सावित्री' की इस अनुपम एवं असाधारण शक्ति को कुछ पंक्तियां पढ़ने के बाद अनुभव करोगे यदि तुम अचंचल मनोभाव से अपने को एकाग्र कर सको, तब तुम अपनी उन समस्याओं का समाधान पाने में समर्थ हो पाओगे जो तुम्हें उद्वेलित कर रही थीं। तुम्हें केवल 'सावित्री' को खोलना भर है- बिना सोचे, बिना पूर्वाग्रह के और तुम अपनी समस्या का

उत्तर पा लोगे और यह सब तुम अन्तर के पूर्ण विश्वास के साथ करो, सच्चाई से करो, परिणाम निश्चित है, निःसंदिग्ध है।

-माताजी

महाभारत में सावित्री और सत्यवान की कहानी आती है, जिसमें मृत्यु पर विजय का मुख्य प्रसंग है। किन्तु यह कथा भी, जैसा कि मानव-कथाओं की अनेक विशेषताओं के साथ इसे प्रस्तुत किया है, वैदिक युग की एक प्रतीकात्मक पौराणिक गाथा है। सत्यवान वह आत्मा है जिसके भीतर सत्ता का दिव्य सत्य तो वर्तमान है किन्तु जो नीचे उतरकर मृत्यु एवं अज्ञान की पकड़ में आ गया है।

सावित्री दिव्य वाक है, सन्देश है, सूर्य-पुत्री है, सर्वोच्च सत्य की देवी है, जो उद्धार के हेतु नीचे उतरती और जन्म लेती है। अश्वपति अश्व (प्राणशक्ति) का प्रभु है, 'सावित्री' का मानवी पिता है, तपस्या का अधिपति है। उसमें आध्यात्मिक प्रयास की वह घनीभूत शक्ति है,

जो मनुष्य को मर्त्य स्तर से ऊपर के स्तरों तक पहुंचने में सहायता करती है।

द्युमत्सेन देदीप्यमान सेन्यगण का नायक और सत्यवान का पिता है। वह दिव्य मन है जो यहाँ पतित होकर अंधा हो गया है। उसने दिव्य दृष्टि के आलौकिक साम्राज्य को खो दिया है और इस क्षति के परिणामस्वरूप अपने वैभवशाली राज्य को भी।

तो भी यह कथा एक रूपक मात्र नहीं है, इसके पात्र केवल मानवीय गुण मात्र नहीं हैं, वरन् वे उन सजीव एवं संचेतन शक्तियों के अवतार और विभूतियाँ हैं, जिनके प्रत्यक्ष सम्पर्क में हम आ सकते हैं और वे भी मानव-शरीर धारण करती हैं, जिससे कि वे मानव की सहायता कर सकें, उसे उसकी मरणधर्मा अवस्था से ऊपर एक दिव्य चेतना और अमर जीवन का मार्ग दिखा सकें।

(श्री अरविन्द का सावित्री विषयक एक लघु कथन)



नव-सृजन का एक तिनका

शैलेन्द्र प्रसाद पाण्डेय

देखता हूँ जब कभी
अवाक् रह जाता हूँ मैं
दिव्यता की उस अनोखी-सी
छटा को देखकर।
हर तरफ बस दिव्यता है
नव-सृजन की आह है
उच्च शिखरों में पहुँचने की
सभी में चाह है
झूमकर हर बेल-पल्लव
हर कली हर अली भी गाते
भीनी खुशबू के सहारे
है यही संदेश लाते ‘
तोड़कर के आवरण को
नव विहाँ में साँस लेकर
इक नया सौंदर्य, नव संसार
भी तो हैं सजाते।
हे मनुज! होकर सचेतन
तोड़ दे हर आवरण को
मोह-माया-मत्सरों को

मृत्यु के सब बन्धनों को-
नव सृजन का एक तिनका
अब तुम्हें ही तो है बनना
दिव्यता की यज्ञ-भू में भी
तुम्हें ही तो है जलना।
मत जियो अब अधंता में
मत जियो अवसाद में
स्वर्ग से आनन्द की-
गंगा बहाई जा रही है
हृद्-कमण्डल रिक्त करके
भर लो जितना भर सको तुम
रह लो जितना रह सको तुम
घाट में इक घर बनाकर।
चल पड़ो अब ठान करके
क्रान्ति की उस राह पर
माँ तुम्हारे ही लिए
खुद को तपाकर जो दिखाई
खुद को कुदंन अब बना लो
क्रान्ति की उस आग में

मां तुम्हारे ही लिए

खुद को जलाकर जो जलाई ।

ऐसा कुंदन ही बनेगा

एक अवयव नव-सृजन का

ऐसा कुंदन बन सकेगा

एक योद्धा अश्वपति का

सत-असत के हर क्षितिज से

सूर्य चमकेगा जहान में ।



यदि तुम भागवत् कर्म के सच्चे कर्मी बनना चाहते हो तो तुम्हारा लक्ष्य यही होना चाहिये कि तुम वासना मात्र से, तथा अपने-आपको ही सर्वस्व मानने वाले अहंकार से सर्वथा विनिर्मुक्त हो जाओ। तुम्हारा समस्त जीवन भगवान् के प्रति पुष्पाजंलि और यज्ञाहुति हो; कर्म में तुम्हारा एक मात्र लक्ष्य हो भागवती शक्ति की लीला में उनकी सेवा करना, उन्हें धारण करना, कृतार्थ करना और उनके प्राक्त्य का यंत्र बनना। तुम्हें भागवत् चैतन्य से चैतन्य होना होगा, यहाँ तक कि तुम्हारी इच्छा और भगवती की इच्छा में कोई भेद ना रह जाय, तुम्हारे अन्दर उनकी प्रेरणा के अतिरिक्त और कोई संकल्प ही ना उठे, कोई कर्म ऐसा ना हो जो तुम्हारे अन्दर और तुम्हारे द्वारा होने वाला उन्हीं का चिन्मय कर्म ना हो।

श्री अरविन्द

उत्तरपाड़ा भाषण

श्रीअरविन्द का जगत्-प्रसिद्ध भाषण

(अलीपुर जेल से छूटने के बाद श्रीअरविन्द का पहला महत्वपूर्ण भाषण उत्तरपाड़ा में हुआ था। इसमें उन्होंने अपने जेल-जीवन का आध्यात्मिक अनुभव सुनाया और साथ ही देश को सच्ची राष्ट्रीयता का सन्देश दिया। इसमें उन्होंने बताया है कि सच्चा हिन्दू धर्म, सच्चा सनातन धर्म क्या है और आज के संसार को उसकी क्यों जरूरत है! उनका यह भाषण उनके जीवन में एक नये मोड़ का परिचय देता है।)

जब मुझे आपकी सभा के इस वार्षिक अधिवेशन में बोलने के लिए कहा गया, तो मैंने यही सोचा था कि आज के लिए जो विषय चुना गया है उसी पर, अर्थात् हिन्दूधर्म पर कुछ कहूंगा। मैं नहीं जानता कि उस इच्छा को मैं पूरा कर सकूंगा या नहीं; क्योंकि जैसे ही मैं यहां आकर बैठा मेरे मन में एक सन्देश आया और यह सन्देश आपको और सारे भारतराष्ट्र को सुनाना है। यह वाणी मुझे पहले-पहल जेल में सुनायी दी थी और उसे अपने देशवासियों को सुनाने के लिए मैं जेल से बाहर आया हूँ।

पिछली बार जब मैं यहां आया था उसे एक वर्ष से ऊपर हो चुका है। उस बार मैं अकेला ना था; तब मेरे साथ ही बैठे थे राष्ट्रीयता के एक परम शक्तिमान दूत। उन दिनों वे उस एकांतवास से लौटकर आये थे जहां उन्हें भगवान् ने इसलिए भेजा था कि वे अपनी कालकोठरी की शान्ति और निर्जनता में से उस वाणी को सुन सकें जो उन्हें सुनानी थी। उस समय आप सैकड़ों की

संख्या में उन्हीं का स्वागत करने आये थे। आज वे हमसे बहुत दूर हैं, वे हमसे हजारों मील के फासले पर हैं। दूसरे लोग भी, जिन्हें अपने साथ काम करते ही पाता था, आज अनुपस्थित हैं। देश पर जो तूफान आया था उसने उन्हें दूर-दूर बिखेर दिया है। इस बार एक वर्ष का समय निर्जनवास में बिताकर आया हूँ और अब बाहर आकर देखता हूँ कि सब-कुछ बदल गया है। जो सदा मेरे साथ बैठते थे, जो सदा मेरे काम में सहयोग दिया करते थे, आज बर्मा में कैद हैं, दूसरे उत्तर में नज़रबन्द होकर सड़ रहे हैं। जब मैं बाहर आया तो मैंने अपने चारों ओर देखा, जिनसे सलाह और प्रेरणा पाने का अभ्यास था उन्हें खोजा। वे मुझे नहीं मिले। इतना ही नहीं, जब मैं जेल गया था तो सारा देश वन्दे मातरम् की ध्वनि से गूँज रहा था, वह एक राष्ट्र बनने की आशा से जीवित था। यह उन करोड़ों मनुष्यों की आशा थी जो गिरी हुई दशा से अभी-अभी ऊपर उठे थे। जब मैं जेल से बाहर आया तो मैंने इस ध्वनि को सुनने की कोशिश की, किन्तु इसके स्थान पर निस्तब्धता थी। देश में सन्नाटा था और लोग हक्के-बक्के से दिखायी दिये; क्योंकि जहां पहले हमारे सामने भविष्य की कल्पना से भरा ईश्वर का उज्ज्वल स्वर्ग था वहां हमारे सिर पर धूसर आकाश दिखायी दिया जिससे मानवीय वज्र और बिजली की वर्षा हो रही थी। किसी को यह नहीं दिखायी देता था कि किस ओर चलना चाहिये, चारों ओर से यही प्रश्न उठ रहा था 'अब

क्या करें? हम क्या कर सकते हैं?' मुझे भी पता ना था कि अब क्या किया जा सकता है। लेकिन एक बात मैं जानता था, ईश्वर की जिस महान शक्ति ने उस ध्वनि को जगाया था, उस आशा का संचार किया था उसी शक्ति ने यह सन्नाटा भेजा है। जो ईश्वर उस कोलाहल और आन्दोलन में थे, वे ही इस विश्राम और निस्तब्धता में भी हैं। ईश्वर ने इसे भेजा है ताकि राष्ट्र क्षण भर के लिये अपने अन्दर खोजे और जाने कि उनकी इच्छा क्या है। इस निस्तब्धता से मैं निरुत्साहित नहीं हुआ हूँ, क्योंकि कारागार में इस निस्तब्धता के साथ मेरा परिचय हो चुका है और मैं जानता हूँ कि मैंने एक वर्ष की लम्बी कैद के विश्राम और निस्तब्धता में ही यह पाठ पढ़ा है। जब विपिनचन्द्र पाल जेल से बाहर आये तो वह एक सन्देश लेकर आये थे और वह प्रेरणा से मिला हुआ सन्देश था। उन्होंने यहाँ जो वक्तृता दी थी वह मुझे याद है। उस वक्तृता का मर्म और अभिप्राय उतना राजनीतिक नहीं था जितना धार्मिक था। उन्होंने उस समय जेल के अन्दर मिली हुई अनुभूति की, हम सबके अन्दर जो भगवान् हैं, राष्ट्र के अन्दर जो परमेश्वर है उनकी बात की थी। अपने बाद के व्याख्यानों में भी उन्होंने कहा था कि इस आन्दोलन में जो शक्ति काम कर रही है वह सामान्य शक्ति की अपेक्षा महान् है और इसका हेतु भी साधारण हेतु से कहीं बढ़कर है। आज मैं भी आपसे फिर मिल रहा हूँ, मैं भी जेल से बाहर आया हूँ और इस बार भी आप ही, इस उत्तरपाड़ा के निवासी ही, मेरा सबसे पहले स्वागत कर रहे हैं। किसी राजनीतिक सभा में नहीं, बल्कि उस समिति की सभा में जिसका उद्देश्य है धर्म की रक्षा। जो सन्देश विपिनचन्द्र पाल ने बक्सर जेल में पाया

था वही भगवान् ने मुझे अलीपुर में दिया। वह ज्ञान भगवान् ने मुझे बारह महीने के कारावास में दिन-प्रतिदिन दिया और आदेश दिया है कि अब मैं जेल से बाहर आ गया हूँ तो आपसे उसकी बात करूँ।

मैं जानता था कि मैं जेल से बाहर निकल आऊंगा। यह वर्ष भर की नजरबन्दी केवल एक वर्ष के एकान्तवास और प्रशिक्षण के लिए थी। भला किसी के लिए यह कैसे सम्भव होता कि वह मुझे जेल में उतने दिनों से अधिक रोक रखता जितने दिन भगवान् ने कहने के लिए एक सन्देश दिया है और करने के लिए एक काम, मैं यह जानता था कि जब तक यह सन्देश सुना नहीं दिया जाता तब तक कोई मानव-शक्ति मुझे चुप नहीं कर सकती, जब तक वह काम नहीं हो जाता तब तक कोई मानव-शक्ति भगवान् के यंत्र को रोक नहीं सकती, फिर वह यंत्र चाहे कितना ही दुर्बल, कितना ही कमजोर क्यों ना हो। अब जबकि मैं बाहर आ गया हूँ, इन चन्द मिनटों में ही मुझे एक ऐसी वाणी सुझायी गयी है जिसे कहने की मेरी कोई इच्छा ना थी। मेरे मन में जो कुछ था उसे भगवान् ने निकालकर फेंक दिया है और मैं जो कुछ बोल रहा हूँ वह एक प्रेरणा के वश होकर, बाध्य होकर बोल रहा हूँ।

जब मैं गिरफ्तार कर के जल्दी-जल्दी लाल बाजार की हवालात में पहुंचाया गया तो मेरी श्रद्धा क्षणभर के लिए डिंग गयी थी, क्योंकि उस समय मैं भगवान् की इच्छा के मर्म को नहीं जान पाया था। इसलिए मैं क्षणभर के लिए विचलित हो गया और अपने हृदय में भगवान् को पुकारकर कहने लगा, 'यह क्या हुआ? मेरा यह विश्वास था कि मुझे अपने देशवासियों के लिये कोई

विशेष काम करना है और जब तक वह काम पूरा नहीं हो जाता तब तक तुम मेरी रक्षा करोगे। तब फिर मैं यहाँ क्यों हूँ और वह भी इस प्रकार के अभियोग में?' एक दिन बीता, दो दिन बीते, तीन दिन बीत गये, तब मेरे अन्दर से एक आवाज आयी 'ठहरो और देखो कि क्या होता है।' तब मैं शान्त हो गया और प्रतीक्षा करने लगा। मैं लाल बाजार थाने से अलीपुर जेल में ले जाया गया और वहाँ मुझे एक महीने के लिये मनुष्यों से दूर एक निर्जन कालकोठरी में रखा गया। वहाँ मैं अपने अंदर विद्यमान भगवान् की वाणी सुनने के लिए, यह जानने के लिये वे मुझसे क्या कहना चाहते हैं और यह सीखने के लिये कि मुझे क्या करना होगा, रात-दिन प्रतीक्षा करने लगा। इस एकान्तवास में मुझे सबसे पहली अनुभूति हुई, पहली शिक्षा मिली। उस समय मुझे याद आया कि गिरफ्तारी से एक महीना या उससे भी कुछ अधिक पहले मुझे यह आदेश मिला था कि मैं अपने सारे कर्म छोड़कर एकान्त में चला जाऊँ और अपने अंदर खोज करूँ ताकि भगवान् के साथ अधिक संपर्क में आ सकूँ। मैं दुर्बल था और उस आदेश को स्वीकार ना कर सका। मुझे अपना कार्य बहुत प्रिय था और हृदय में इस बात का अभिमान था कि यदि मैं ना रहूँ तो इस काम को धक्का पहुंचेगा, इतना ही नहीं शायद असफल और बन्द भी हो जायेगा; इसलिये मुझे काम नहीं छोड़ना चाहिये। ऐसा बोध हुआ कि वे मुझसे फिर बोले और उन्होंने कहा कि, 'जिन बन्धनों को तोड़ने की शक्ति तुममें नहीं थी उन्हें तुम्हारे लिये मैंने तोड़ दिया है क्योंकि मेरी यह इच्छा नहीं है और ना थी कि वे कार्य जारी रहें। तुम्हारे करने के लिये मैंने दूसरा काम चुना है और उसी

के लिये मैं तुम्हें यहां लाया हूँ ताकि मैं तुम्हें वह बात सिखा दूँ जिसे तुम स्वयं नहीं सीख सके और तुम्हें अपने काम के लिये तैयार कर लूँ।' इसके बाद भगवान् ने मेरे हाथों में गीता रख दी। मेरे अन्दर उनकी शक्ति प्रवेश कर गयी और मैं गीता की साधना करने में समर्थ हुआ। मुझे केवल बुद्धि द्वारा ही नहीं, बल्कि अनुभूति द्वारा यह जानना पड़ा कि श्री कृष्ण की अर्जुन से क्या मांग थी और वे उन लोगों से क्या माँगते हैं जो उनका कार्य करने की इच्छा रखते हैं, अर्थात् घृणा और वासना-कामना से मुक्त होना होगा, अपनी इच्छा का त्याग करना होगा और निश्चेष्ट तथा सच्चा यंत्र बनकर भगवान् के हाथों में रहना होगा, ऊंच और नीच, मित्र और शत्रु, सफलता और विफलता के प्रति समदृष्टि रखनी होगी और वह सब होते हुए भी उनके कार्य में कोई अवहेलना ना आने पाये। मैंने यह जाना कि हिन्दू धर्म का मतलब क्या है।

बहुधा हम हिन्दू धर्म, सनातन धर्म की बातें करते हैं, किन्तु वास्तव में हममें से कम ही लोग यह जानते हैं कि यह धर्म क्या है। दूसरे धर्म मुख्य रूप से विश्वास, व्रत, दीक्षा और मान्यता को महत्व देते हैं, किन्तु सनातन धर्म तो स्वयं जीवन है, यह इतनी विश्वास करने की चीज नहीं है, जितनी जीवन में उतारने की चीज है। यही वह धर्म है जिसका लालन-पालन मानवजाति के कल्याण के लिए प्राचीन काल से इस प्रायद्वीप के एकान्तवास में होता आ रहा है। यही धर्म देने के लिए भारत उठ रहा है।

भारतवर्ष, दूसरे देशों की तरह, अपने लिए ही या मजबूत होकर दूसरों को कुचलने के लिये नहीं उठ रहा वरन् सारे संसार पर वह सनातन ज्योति डालने के लिये जो उसे साँपी गयी है।

भारत का जीवन सदा ही मानवजाति के लिए महान् होना है।

अतः भगवान् ने मुझे दूसरी वस्तु दिखाई- उन्होंने मुझे हिन्दू धर्म के मूल सत्य का साक्षात्कार करा दिया। उन्होंने मेरे जेलरों के दिल को मेरी ओर मोड़ दिया, उन्होंने जेल के प्रधान अंग्रेज अधिकारी से कहा कि 'ये कालकोठरी में बहुत कष्ट पा रहे हैं; इन्हें कम-से-कम सुबह-शाम आधा-आधा घंटा कोठरी के बाहर टहलने की आज्ञा दे दी जाये।' यह आज्ञा मिल गयी और जब मैं टहल रहा था तो भगवान् की शक्ति ने फिर मेरे अन्दर प्रवेश किया। मैंने उस जेल की ओर दृष्टि डाली जो मुझे और लोगों से अलग किये हुए था। मैंने देखा कि अब मैं उसकी ऊँची दीवारों के अन्दर बन्द नहीं हूँ; मुझे घेरे हुए थे वासुदेव। मैं अपनी कालकोठरी के सामने के पेड़ की शाखाओं के नीचे टहल रहा था, परन्तु वहाँ पेड़ ना था, मुझे प्रतीत हुआ कि वह वासुदेव है; मैंने देखा कि स्वयं श्रीकृष्ण खड़े हैं और मेरे ऊपर अपनी छाया किये हुये हैं। मैंने अपनी कालकोठरी के सीखचों की ओर देखा, उस जाली की ओर देखा, जो दरवाजे का काम कर रही थी, वहाँ भी वासुदेव दिखायी दिये। स्वयं नारायण सन्तरी बनकर पहरा दे रहे थे। जब मैं उन मोटे कंबलों पर लेटा

जो मुझे पलंग की जगह मिले थे तो यह अनुभव किया कि मेरे सखा और प्रेमी श्रीकृष्ण मुझे अपनी बाहुओं में लिये हुए हैं। मुझे उन्होंने जो गहरी दृष्टि दी थी उसका यह पहला प्रयोग था। मैंने जेल के कैदियों-चोरों, हत्यारों और बदमाशों-को देखा और वासुदेव दिखायी पड़े, उन अंधेरे में पड़ी आत्माओं और बुरी तरह काम में लाये गये शरीरों में मुझे नारायण मिले। उन चारों ओर डाकुओं में बहुत से ऐसे थे जिन्होंने अपनी सहानुभूति और दया के द्वारा मुझे लज्जित कर दिया, इस विपरीत परिस्थिति में मानवता विजयी हुई थी। इनमें से एक आदमी को मैंने विशेष रूप से देखा जो मुझे एक सन्त मालूम हुआ। वह हमारे देश का एक किसान था जो लिखना-पढ़ना नहीं जानता था, जिसे डकैती के अभियोग में दस वर्ष का कठोर दण्ड मिला था। यह उनमें से एक व्यक्ति था जिन्हें हम वर्ग के मिथ्याभिमान में आकर 'छोटा लोक' (नीच) कहा करते हैं। फिर एक बार भगवान् मुझसे बोले, उन्होंने कहा 'अपना कुछ थोड़ा-सा काम करने के लिये मैंने तुम्हें जिनके बीच भेजा है उन लोगों को देखो। जिस जाति को मैं ऊपर उठा रहा हूँ उसका स्वरूप यही है और इसी कारण मैं उसे ऊपर उठा रहा हूँ।'

क्रमशः



एक महामानव की महायात्रा

डॉ० के. एन. वर्मा

(गतांक से आगे)

फुटपाथ के गड्डे से कंचनजंघा के शिखर तक की यात्रा

दिल्ली जैसी अनजानी दुनिया में पैर रखते ही गांव की गली में गिल्ली खेलने वाले सिकन्दर लाल की सिट्टी-पिट्टी भूल गई। जीवन की यथार्थता को पहली बार इतने पास से उन्होंने देखा। घबराहट तो हुई पर संकल्प की चट्टान ने हमेशा ही भीतर से उन्हें ढाढस बंधाया। 'जीवन एक संघर्ष है, संघर्ष करो' जैसी एक ध्वनि उन्हें आश्वस्त कर रही थी। अतएव दो रूपये की उधार की पूँजी से स्टेशनरी के कुछ सामान, चूना, पान और जले हुये मोबिल ऑयल की दुकान लगाकर वे दिल्ली के चलतू फुटपाथ पर बैठ गये। घण्टे भर में दो पैसे से लेकर एक आने तक मुनाफा मिल जाता। उसमें से एक पैसे की पांच रोटियां, एक पाई में एक लोटा मट्ठा और एक धेले में सेर भर नमक और मिर्च तक मिल जाता था।

इसी आय से रात-दिन भगवान् का भोग लगने लगा। परिश्रम का पसीना कितना मीठा होता है इसका पता उन्हें तब लगता जब गाय की सार में खाट पर बैठकर वे मट्ठा रोटी जीमते। दुकान बड़ी तो ठेला ले लिया और कोयला और चूना बेचने लगे। टाइपिंग सीख ली झाड़ू लगाने की मजदूरी से वे बाबू बन गये। कांग्रेस कमेटी में रात-दिन काम करते हुये उनकी ईमानदारी ने उन्हें ख्याति प्राप्त नेताओं का चहेता बना दिया। एक दिन उनके पीछे 50,000 की भीड़ चल

पड़ी और इस दमदार नेता ने अंग्रेजी पुलिस को चकमा देते हुए चाँदनी चौक में "भारत की पूर्ण आजादी" का उस भीड़ में घोषणा-पत्र पढ़कर शंख फूँक दिया। यह 1930 की घटना है।

अपने पुरुषार्थ के बल पर अब एक के बाद एक सफलता की चोटी पर उन्होंने चढ़ना शुरू किया। जिस व्यवसाय में ही वे हाथ लगा देते, उसमें ही धन बरसने लगता। 1932 में पण्डित कन्हैया लाल पुंज के साथ साझे में व्यापार शुरू करने के लिये एक फर्म का गठन किया। धीरे-धीरे वे स्वयं इसके मालिक बन गये। कोयले और चूने का धंधा ऐसा चला कि वे कम्पनी के संचालक बन गये। यही आगे चलकर सुरेन्द्र से सण्डर्सन कम्पनी बन गई। जिसका कारोबार कटनी से लेकर कलकत्ता तक फैल गया। फुटपाथ की इकट्टी की कमाई अब करोड़ों की गिनती तक पहुँच गई। जौहर साहब दुनिया की दृष्टि में जौहरी बन गये।

दिल्ली में उन्होंने तीसों एकड़ खरीद ली। कुतुब के रास्ते पर एक आलीशान बंगला भी बन गया। जिसके दरवाजे पर कार खड़ी होने लगी। यह बात अलग है कि कंचनजंघा की इस ऊँचाई पर पहुँचकर भी एक क्षण के लिये भी फुटपाथ की निचाई पर बैठने वाली जिन्दगी की सहजता को सहेजना उन्होंने नहीं भुलाया। एक अदृश्य शक्ति उन्हें किसी अन्य चोटी पर चढ़ने के लिये ठेले जा रही थी। कोई अद्भुत छाया उनके आगे पीछे चल रही थी। इस अनसुनी आहट को पा लेने की एक जिज्ञासा धीरे-धीरे उनके भीतर जन्म ले

रही थी। भरे-पूरे जलाशय में चुपके-चुपके कभी ना बुझने वाली प्यास अपने ओंठ फैला रही थी। इसी प्यास ने उन्हें इस शीशमहल की गद्दी से उतार कर भगवान् का चौकीदार बनाया। और इसे चौकीदार बनाया और इसकी चौकीदारी पर देवताओं को ईर्ष्या होने लगी।

गोशाला के झाड़ू से श्रीअरविन्दाश्रम के संचालन तक की यात्रा

दिल्ली जैसे शहर में रात को सिर ढकने के लिये गांव के आदमी को कोई छप्पर नहीं मिल पाता। इकतरी की कमाई से उनका पेट तो किसी तरह चलने लगा था पर रात को वे सोते कहाँ ? एक दिन झाड़ू लगा देने के पारिश्रमिक बतौर उन्हें एक घर में छप्पर के नीचे गाय के पीछे अपनी खाट डाल लेने की अनुमति उस मकान मालिक से मिल गई। जौहर साहब ने बताया कि कभी-कभी सोते समय गाय उनके ऊपर गोबर और पेशाब भी कर दिया करती थी। पर गाय तो गोमाता है और गोमूत्र में कितनों ही रोगों को दूर करने की क्षमता होती है। अतएव उनके स्वास्थ्य में कभी गिरावट नहीं आई। वे अधिक स्वस्थ रहने लगे और आर्य समाज और कांग्रेस कमेटी के कार्यों को द्विगुणित उत्साह और ऊर्जा से पूरा करने लगे।

गरीबी और सामान्य जीवन अहंविहीन व्यक्तित्व के रचना की सर्वोत्तम पाठशाला होता है। अभावग्रस्त काया और कठिनाइयाँ ही मनुष्य को कर्मठ बनाती हैं। जौहर साहब ने लम्बे समय तक इस पाठशाला में शिक्षा ग्रहण की। इसीलिये वैभव के मंचों पर भी अपने पैबन्द लगे कोट को पहनने में उन्होंने अपने को कभी असहज अनुभव

नहीं किया। उपलब्धियों के अपने शिखर को भोले-भाले ग्रामीणों की चौपाल में झुकाकर एक किसान और मजदूर से ठेठ भाषा में बतियाते थे और उनके दर्द में प्रतिभागी बन जाते थे। इस सहजता, कर्मठता और पसीने की कमाई ने उनके भीतर योग का सहजमार्ग तैयार कर दिया। बिना ध्यान-धारणा और प्रणायाम जैसी मानसिक कसरतों के ही वे श्रीअरविन्द योग में अनजाने ही दीक्षित होते रहे और एक दिन बिना किसी मुहूर्त के ही छापामार कर जगज्जनी पर अधिकार करके अपना झण्डा गाड़ दिया। इस निष्कण्टक राज्य में जीवनभर वे राज्य करते रहे- आज भी कर रहे हैं।

पहली ही दृष्टि में दृष्टा ने इन्हें पहचान लिया और अपना खजाना सौंप दिया। किसने यह स्वप्न देखा था कि कोयले और चूने को ठेले में बेचने वाले एक श्रमण का श्रमयोग दिल्ली जैसी राजधानी के हृदय में श्री अरविन्दाश्रम का संचालन करेगा जहाँ सारी दुनिया के लोग आकर कर्मभूमि की बोलती इस वेदी की परिक्रमा करेंगे? एक देवता का यह श्रम बिना बोले ही श्रीअरविन्द योग के सारे सूत्रों को पूरा समझा देता है।

बन्दीगृह की जंजीरों से मुक्ताकाश में उड़ान तक की यात्रा

राष्ट्रीय आन्दोलन में जौहर ने जौहर किया। एक दमदार पंजाबी सिख की तरह उन्होंने आततायी के हर कदम पर प्रहार किया। पूरी निर्भीकता के साथ असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। विदेशी माल और वस्त्रों की होली दिल्ली के चौराहों में जलाई। अंग्रेजी हुकूमत पर चलने वाली पुलिस के सुपरिण्टेण्डेंट की पिटाई की।

जेल के सींखचों के भीतर जेलर की नींद हराम कर दी जिसके कारण उन्हें एक छोटी सी कोठरी के भीतर हाथ पैर में बेड़ियां डालकर बन्द रखा जाता था और प्रति दिन चक्की में इनसे 18 सेर अनाज पिसवाया जाता था।

इस परतंत्रता की कठोर यातना में ही उनके भीतर आत्मा की मुक्ति का अनन्त आकाश गढ़ा जा रहा था। इस काल कोठरी से ही एक दिन उनकी आत्मा ने श्रीअरविन्द को पुकारा। एक लम्बी चिट्ठी लिखकर अपने मुकद्दमे की पूरी स्थिति से उन्हें अवगत कराकर परामर्श चाहा। यह परामर्श ही उनके लिये गुरुमंत्र बन गया। उन्होंने निर्णय ले लिया। यात्रा का पथ बदल गया। बाहरी राजनीतिक स्वतंत्रता के स्थान पर आत्मिक स्वतंत्रता के क्षितिज की पहली झलक मिल गई। भीतर में कभी ना शान्त होने वाली एक हलचल ने उन्हें पूरी तरह अधिकृत कर लिया। राजनीति से सन्यास लेकर अनन्त के पथ पर वे चल पड़े।

1939 में भारत दर्शन की यात्रा में उन्हें पाण्डिचेरी का पड़ाव मिला। संध्याकालीन ध्यान के समय श्रीमां की मोहिनी छवि पर उनकी आत्मा लुट गई। एक यूरोपियन के सम्मुख कभी सिर ना झुकाने वाला स्वाभिमानी मस्तक दण्डायमान हो गया, "पाहिमाम् पाहिमाम्।" लगा अतीत का सारा रहस्य खुल गया। प्यासे को अपना समुन्दर मिल गया। हृदय को अपना स्पन्दन प्राप्त हो गया। खोजी मन को अपना बसेरा दिख गया। अभीप्सा की लौ को दिशा मिल गई।

भाव की विभोरता में पूरी रात अनसोयी बीत गई। सांसों में मंत्र झंकृत होने लगा- मां मां मां। यह अजपा जप शुरू हो गया। सुबह दिल्ली

के लिये चल तो पड़े पर अपने हृदय को वहीं छोड़कर। उन्हीं के शब्दों में, 'ऐसा लगा कि मेरे जीवन का खेल निश्चित हो गया। मैं जा तो रहा था परन्तु वापस आने के लिये। लगा मुझे अनमोल मोती मिल गया, ऐसा मोती जिसे पूरी जिन्दगी की मेहनत के बाद भी कोई पा नहीं सकता।'।

अमीरी से फ़क़ीरी तक की यात्रा

कहावत है कि वह अमीर-अमीर नहीं जिसमें फ़क़ीरी ना हो और वह फ़क़ीर-फ़क़ीर नहीं जिसमें अमीरी ना हो। जौहर साहब के जीवन में यह कहावत शत-प्रतिशत चरितार्थ होती है। निपट अकिंचनता और गरीबी से वे किस प्रकार कदम-कदम पर ऊपर उठे उसकी झलक ऊपर की कहानी में मिल जाती है। गरीबी क्षण भर के लिये भी उनमें दिखी नहीं क्योंकि मन में वे हमेशा ही सिकन्दर रहे।

निष्कर्म कर्म की कर्मठता और सच्चाई ने उन्हें सिकन्दर से एक दिन सुरेन्द्र बना दिया। और सुरेन्द्र के पास धन-दौलत, वैभव और स्वर्गीय सौन्दर्य सबकुछ उपलब्ध हो गया। बड़े-बड़े मंत्री, चीफ जस्टिस, कलाकार, विश्वविद्यालय के कुलपति, प्राध्यापक, विद्वान और मण्डलाधीशों की लम्बी कतारें उनके दरबार में दस्तक देने लगीं। तरह-तरह के व्यंजन, मिठाइयों और देव-दुर्लभ पकवानों के टोकरे चढ़ोत्री में चारों ओर से आने लगे। विदेशियों की टोलियाँ भी आत्मा का एक बोल सुनने के लिये वननिवास की चढ़ाई चढ़ने लगीं। संगीत, भजन और शिविरों की पूरी श्रृंखलायें हिमालय की इस मनोरमवादी में अनवरत रूप से जमने लगीं। लेकिन इस सारे वैभव के भीतर एक निर्लिप्त फ़क़ीरी का वैराग्य

चैतन्य के मंदिर में रात-दिन तो लिये खड़ा था। उनका आसन रामकृष्ण परमहंस की खटिया का ही प्रारूप था। इस खटिया को ना दंभ छू सकता था, ना वैभव का स्वांग। त्वदीयम् वस्तु मीराम्बिकाम् तुभ्यमेव समर्पये के साथ हर समय उनका भोग चलता रहता था।



इन्द्रलोकी सम्पदा का त्याग, पद-प्रतिष्ठा का त्याग, मान-सम्मान का त्याग, तन-मन अभिमान का त्याग, समस्त परिवार का त्याग, कर्तव्य का त्याग और वे जो भी थे उसका पूर्ण परित्याग-ऐसा त्याग वर्तमान के पूरे विस्तार में कहीं देखने को नहीं मिलता। पांच मंजिली इमारत की गद्दी में भगवान् और भगवती के खड़ाऊं रखकर बगल की कुटिया में यह फ़क़ीर अपनी जिन्दगी के

दोनों छोरों को आपस में मिलाता रहा। शरीर के पोर-पोर से संसार भर का कूड़ा कफ बन-बन कर निकलता रहा। इस जर्जर शरीर के अस्थि-पिंजर से युग का ज़हर बहता रहा। मां के घुटनों पर माथा टेककर अपनी सिसकियों के सहारे एक दिन भगवान् से पूछ लिया- 'मुझे इतना कष्ट क्यों दिया जा रहा है। मैं ना योग जानता, ना पूजा। तुम्हारे मोटे ग्रंथों को पढ़ने की मुझमें ना हिम्मत है ना बुद्धि। तब मैं क्या करूं?' उत्तर था- 'तुम जो भी कर रहे हो वह तुम्हारे हाथों से मैं ही कर रही हूं। तुम्हारे कार्यों से मुझे पूरा संतोष है। तुम देने के लिये ही पैदा हुये हो।'।

‘इन कष्टों के माध्यम से भी तुम हमारा योग ही कर रहे हो। सहो और देते जाओ।’

उनकी फ़क़ीरी में चुम्बकीय आकर्षण था प्रत्येक आत्मा उनकी पकड़ में आ जाती थी। जहां भी जाते थे, मां का मंदिर बना देते थे। ये मंदिर कितनी ही आत्माओं के भीतर आज उठते दिख रहे हैं। इन्हीं मंदिरों के गृह में आज नये जीवन की नर्सरी रोपी जा रही है। यात्रा का अभी अंत नहीं हुआ है। वह अदृश्य में चल रही है। दृश्य में भी चल रही है। इस महायात्रा में मेरा भी एक पुष्प।



बोध विनोद

सुरेन्द्रनाथ ज़ौहर

अख्तियार

बहुत पुरानी बात नहीं है। यह आश्रम जिस स्थान में हैं, वीरान और जंगल था। गीदड़, उल्लू, साँप, मोर, चूहे आदि तो रहते ही थे।

पहले हमने एक झोपड़ी बनायी और कभी-कभी हम यहाँ आकर रहा करते थे। फिर धीरे-धीरे एक कमरा बनाया और यहाँ रहने लगे।

मास्टर जी कनॉट सर्कस से प्रतिदिन साइकिल से यहाँ आया करते थे। यह देश के स्वतंत्र होने से काफी पहले की बात है। उस समय पंजाब, पेशावर से पानीपत, सोनीपत, करनाल तक एक था और पुलिस में पठान सिपाही भी थे।

एक दिन शायद मास्टर जी से भूल हो गयी या चूक हो गयी तो चौराहे के सिपाही ने उन्हें पकड़ लिया और थाने चलने के लिए कहा। सिपाही पठान था।

मास्टर जी ने कहा-

"क्या आपको इतना अख्तियार है कि मुझे पकड़ कर थाने ले जायें या और भी कोई अख्तियार है? "

सिपाही ने घमण्ड में आकर कहा- "मुझे बहुत अख्तियार हैं।"

मास्टरजी ने कहा- 'क्या मुझे छोड़ देने का भी अख्तियार है? "

उसने कहा- "हाँ, क्यों नहीं? जाओ छोड़ दिया।" ---

खूब सूझी

एक सज्जन बड़े दुःख भरे दिल से कहने लगे कि "यदि इसी तरह मंहगाई बढ़ती गई और कीमतें चढ़ती गई तो हमारा क्या होगा! "

दूसरे सज्जन ने पूछा, "तो क्या करना चाहिये? "

तो वे कहने लगे, "सब लोगों को कम से कम अपने कफ़न के कपड़े तो खरीद लेने चाहिये ना मालूम उस वक्त तक कितने मँहगे हो जाएं। "

दूसरे सज्जन ने कहा, "वह तो किसी ने खुद नहीं खरीदने हैं चिन्ता तो उनको होनी चाहिये जिन्हें खरीदने हैं। "

तो यह सज्जन छटपटा कर कहने लगे कि "खरीदे तो हमारे ही हिसाब में से जाएंगे वे लोग अपने हिसाब (Account) में से क्यों खरीदने लगे। "

जन्म

एक सज्जन मेरे पास आये और नम्रता से पूछने लगे, "जी आपसे कुछ बात करनी है।"

मैंने कहा, "आप बात कर तो रहे हैं।"

तो वे कहने लगे,

"जी मैं आश्रम में आना चाहता हूँ। क्या शर्तें हैं? कोई फार्म भरना पड़ता है? कुछ देना है? "मैंने कहा, "यहाँ यह सब कुछ तो नहीं है। जब आप आश्रम आना चाहते हैं तो यह तो प्रत्यक्ष ही है कि आप क्यों आना चाहते हैं। "

तो वे कहने लगे, "फिर भी। "

मैंने कहा, 'तो फिर क्या? क्या आप जब धरती पर आये थे तो शर्ते पूछकर आये थे? आपकी इच्छा है तो आप आ जाइये। अपने कपड़े-बिस्तर साथ ले आइये।'

वे सज्जन कहने लगे, "यही तो मैं पूछ रहा था। जब मैं इस संसार में आया था तो मैं कुछ भी नहीं लेकर आया। जब आप कहते हैं कि कपड़े-बिस्तर लेकर आइये तो मैं कहाँ से लेकर आऊँ।

"मैंने कहा, 'आप तो सच्चे साधक और जिज्ञासु नज़र आते हैं। तो आप आ तो गये ही हैं! आइये स्नानादि करिये, भोजन करिये, आनन्द से रहिये! और सबको आनन्द बाँटिये।' चलते-चलते मैंने पूछा, पर आपके अन्दर कोई ऐब तो नहीं है? तो वह कहने लगे,

"ऐब तो एक ही है- कि दोनों समय खाना खाता हूँ। "



गतिविधियां

21 फरवरी- को श्रीमां का 139th जन्म दिवस मनाया गया। इस दिन पृष्ठभूमि में सुनील दा के संस्कृत के श्लोकों के साथ “द मदर इंटरनेशनल” के विद्यार्थियों द्वारा भक्ति पूर्ण भजन प्रस्तुत किये गये और आश्रम के युवाओं द्वारा वार्षिक समारोह प्रस्तुत किया गया जिसमें देवी मां के काली और दुर्गा रूपों का अत्यन्त सुन्दर नाटकीय प्रस्तुतिकरण किया गया। संध्या समय March Past & Lights of Aspiration, तारा दीदी व अन्य द्वारा दुर्गा स्रोत पाठ व प्रसाद वितरण के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

4 अप्रैल - को श्री अरविन्द के पॉण्डिचेरी आगमन का 107वां वार्षिक समारोह मनाया गया। इसी दिन तपस्या भवन का संस्थापना दिवस भी था। प्रातः 7 बजे ध्यान कक्ष में श्रीला दीदी द्वारा

आवाहन व संध्या 6:30 से 7:40 तपस्या प्रांगण में श्रीमति वीना सांवले ने संगीत प्रस्तुत किया।

22-23 अप्रैल 2017- को आश्रम के ‘योगा हॉल’ में प्रातः 6:45-12:45 तक Orientation to Integral Yoga का आयोजन किया गया। जिसमें आसन, प्राणायाम, संगीत, जीवन का उद्देश्य, ध्यान व ध्यान की प्रक्रिया व विधियां सम्मिलित थीं। इसके अतिरिक्त 22 अप्रैल को ही सायं 6:30 को भक्ति संगीत का आयोजन किया गया जिसमें ओशियानी दत्ता ने भक्ति पूर्ण भजन प्रस्तुत किये।

24 अप्रैल 2017 को श्री मां के पॉण्डिचेरी आने के उपलक्ष्य में प्रातः ‘मार्च पास्ट’ ‘अभीप्सा की ज्योति’ (Lights Of Aspiration) व संध्या 7 बजे संगीत अर्पण (Musical Offering) व तारा दीदी द्वारा सावित्री का पाठ किया जायेगा।





श्री माँ के 139 वें जन्मदिवस पर सभी आश्रम वासियों द्वारा मार्च पास्ट



आसुरी शक्तियों पर विजय पाने के लिये श्री माँ की शक्ति का आवाहन